पुरातत्व-साहित्य-कला एक दृष्टि

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय

...यापीठ, साहित्य संस्थान, उदयपुर

पुरातत्व-साहित्य-कला
एक दृष्टि

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय

राजस्थान विद्यापीठ, साहित्य संस्थान, उदयपुर

पुरातत्व-साहित्य-कला : एक दृष्टि

प्रकाशक :

साहित्य संस्थान,
राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर

प्रथम संस्करण :
21 मार्च, 1989

मूल्य 50/-

मुद्रक :
कच्छारा प्रिन्टर्स
धानमण्डी, उदयपुर

विषय सूची

प्रकाशकीय

प्रस्तुत पुस्तक 'पुरातत्व-साहित्य-कला : एक दृष्टि' प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति व पुरातत्व के अग्रणी चिन्तक एवं प्रगतिशील विचारक डॉ भगवतशरण उपाध्याय के साहित्य संस्थान द्वारा आयोजित महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचन्द ओझा आसन अभिभाषण माला के अन्तर्गत प्रदान किए गए भाषणों का मुद्रित स्वरूप है। डॉ. उपाध्याय ने उक्त अभिभाषणों में पुरातत्व, साहित्य व कला की क्षेत्रीय एव राष्ट्रीय विषय-वस्तु के स्थान पर पुरातत्व, साहित्य व कला के सार्वभौमिक सिद्धान्तों व तथ्यों को प्रतिपादित करने का प्रयत्न किया है।

उक्त पुस्तक के प्रकाशन में यद्यपि पर्याप्त सतर्कता का निर्वाह किया गया है तथा इस ओर यथेष्ट सावधानी बरती गयी है कि अभिभाषणों का लिप्यान्तर कर उनको प्रकाशित करते समय अभिभाषणकर्ता के विचारों को तोड़ने-मरोड़ने से बचाया जा सके क्योंकि संस्थान पर्याप्त सम्पर्क करने के पश्चात् भी, डॉ. उपाध्याय के उच्चायुक्त के रूप में मॉरिशस चले जाने तथा इसके पश्चात् उनका निधन हो जाने के कारण, लेखक से इन अभिभाषणों की पाण्डुलिपि को संशोधित नहीं कराया जा सका था। इसकी पाण्डुलिपि तैयार कर वर्तमान रूपमें इसे पुस्तकाकार रूप में प्रस्तुत करने में संस्थान में सहायक निदेशक डॉ. ललित पाण्डेय ने काफी श्रम किया है, भाषा एवं प्रस्तुती सम्बन्धी आवश्यक सुधार भी किये हैं ताकि इन अभिभाषणों को पुस्तकीय रूप दिया जा सके।

संस्थान उक्त पुस्तक के प्रकाशन के लिए प्रदान किए गए अनुदान हेतु राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर के वाइस चांसलर, मनीषी पं. जनार्दनराय नागर का हृदय से आभार व्यक्त करता है, इसके साथ ही संस्थान राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर के विद्यामहामात्र-पीठ पण्डित प्रो. के.के. वशिष्ठ तथा अर्थ अभियन्ता श्री मदनलाल लाहोटी द्वारा प्रदत्त सक्रिय सहयोग के लिए भी धन्यवाद ज्ञापित करता है।

संस्थान श्री बी.एल. कच्छारा, कच्छारा प्रिन्टर्स, उदयपुर का भी आभारी है जिनके सहयोग से अत्यल्प समय में उक्त पुस्तक का प्रकाशन संभव हो सका।

विश्वास है कि विद्वद्जन संस्थान के इस प्रकाशन का स्वागत कर अपने सुझाव प्रेषित करेंगे।

डॉ. देव कोठारी
निदेशक

21 मार्च, 1990

पुरातत्व

पुरातत्व यह ज्ञान कराता है कि मानव जाति अविच्छिन्न है। जिस प्रकार काल की गति अनादि है, अनन्त है, ठीक वैसे ही मनुष्य की भी अनादि प्रवाह सृष्टि है। इतिहासवेत्ताओं ने काल का विभाजन अपनी-अपनी सुविधा जानकारी के लिए तीन भागों यथा - अतीत वर्तमान और भविष्य के रूप में किया है. परन्तु वास्तव में काल की उक्त सीमाएं खींची नहीं जा सकती हैं। क्योंकि वास्तव में काल एक संक्रमण है जिसका न तो आदि ही है और न ही अंत है। अतः काल के अखण्ड प्रवाह में मानवीय अस्तित्व का गतिमय स्वरूप इतिहास है। मानवीय प्रज्ञा द्वारा किया गया इस गति का विभाजन युग है। प्रज्ञा काल के अखण्ड स्वरूप को विभाजन के माध्यम से ग्रहण करती है। वास्तव में जो आज है, वह इतिहास नहीं है, जिसकी इति हो चुकी वह इतिहास बन गया। और, पुरातत्व बहुत पुराना है, बहुत क्लिष्ट है। पुरात्व का मार्ग गर्द और कंकड़ों से भरा हुआ है — गर्द, कंकड़ बिना साफ किया हुआ चमड़ा - चर्म - यही इसके उपादेय हैं, कार्य करने के तरीके हैं।

पुरातत्व का आधार समग्र इतिहास है। यहां यह आवश्यक हो जाता है कि इतिहास से पूछा जाए कि इतिहास का आधार क्या है? जो बीत गया, वह सम्पूर्ण ही इतिहास नहीं है। यहां पुनः-पुनः प्रश्न उत्पन्न होता है कि इतिहास का निर्माण कैसे हुआ? इतिहास किन वस्तुओं पर आश्रित है?

सही अर्थों में इतिहास अतीत के सभ्य युग में किए मानव - प्रयास की आनुक्रमिक कथा है। इतिहास शरीर के आवश्यक अंग अधोलिखित प्रकार से निर्धारित किए जा सकते हैं—

(i) अतीत (ii) सभ्य युग (iii) मानव प्रयास और (iv) घटनाओं का

आनुक्रमिक प्रसार। वर्तमान जो अभी जीवित है, इतिहास का विषय नहीं है, यद्यपि वह शीघ्र ही अतीत होकर उसका अंग हो जाएगा। अतः इतिहास विगत घटनाओं का चिन्तन करता है। मानव इतिहास को अध्ययन की सुविधा के लिये दो बृहद् भागों में विभाजित किया जा सकता है— (i) बर्बर युग, और (ii) सभ्य युग। मानव के विकास क्रम को अध्ययन करने की दृष्टि से बर्बर युग का अध्ययन, जिसके अन्तर्गत - पूर्व और उत्तर पाषाण-कालीन मनुष्य तक का काल समाहित है, सभ्य युग के इतिहास के आधार और पृष्ठभूमि के रूप में ही किया जाना आवश्यक है। चूंकि इस काल का कोई कालक्रमानुसार वर्णन उपलब्ध नहीं होता है, इसलिए इस युग की घटनाओं और मानव प्रयासों का अध्ययन वास्तव में किसी न किसी अंश में समाज-शास्त्र का अध्ययन हो जाता है। अतः इसके अन्तर्गत मूलरूप से दो रूपों – मानव जाति के इतिहास और उस जाति के विभिन्न दलों के स्वकीय और सामूहिक आचरण के अध्ययन समाहित होते हैं, इनको क्रमशः 'एन्थ्रापॉलोजी' और 'एथनॉलोजी' कहा जाता है। इनको अधिक विस्तार से इस प्रकार से समझा जा सकता है– जैसे सभी मनुष्य समूह में आचरण नहीं करते हैं तथा सभी उसके सामूहिक स्वरूप को नहीं पहिचान पाते हैं, जो सामूहिक स्वरूप को पहिचानता है वही समाज के सामाजिक स्वरूप को पहिचानता है। वास्तव में हम सब समूह में तो रहते हैं किंतु समाज में हम कम ही रहते हैं। समाज का अर्थ है अपनी तरह बनाते जाना, अपने को निरस्त कर देना। समूह का अर्थ है देख-देख कर बनाना। जैसे हम कहें कि एक धन, एक धन, एक धन, एक धन (1+1+1+1), तो इन इकाईयों का जोड़ 4 होगा और यह संख्या हम जैसे-जैसे जोड़ते जायेंगे अनन्त होती जाएगी। इसके विपरीत जब हम एक गुणा एक गुणा एक गुणा एक कहें तो वह संख्या सदैव एक ही रहेगी। ठीक इसी प्रकार से सामाजिक प्रक्रिया निरस्त वैयक्तिक प्रक्रिया है और सामूहिक प्रक्रिया पशु की प्रक्रिया। सामूहिक प्रक्रिया में केवल संख्याएं होती हैं, समाज नहीं होता है। इसी सन्दर्भ में सभ्य और सभ्यता का अर्थ समझा जा सकता है। सीधे-सादे शब्दों में वह सभ्य है जिसे सभा में बैठने की तमीज हो। इसका यह अर्थ हुआ कि सभा में व्यक्ति अकेला ही नहीं बैठता है और

वहां व्यक्ति के बैठने पर उसकी स्वतन्त्रता वैयक्तिक न रहकर सामूहिक और उससे भी ऊपर सामाजिक हो जाती है अर्थात् सामाजिक प्रक्रिया में प्रत्येक से प्रत्येक सीमित है लेकिन उसकी यह सीमा प्रवाहमान जल की भाँति है जो सारी सतह को लेकर चलते हुए इतना भयानक बन जाता है कि वह चाहे तो कुछ भी कर सकता है। ठीक इसी प्रकार समाज की शक्ति होती है और वही शक्ति सभा की होती है जहांकि सभ्य बैठता है, यहां यह प्रश्न उठता है– क्यों ? क्योंकि सभा में बैठकर व्यक्ति दूसरों का आदर करता है तथा दूसरे का अस्तित्व स्वीकार भी करता है।

इसके पश्चात् इतिहास के प्रमुख आधारों में तुलनात्मक भाषा - विज्ञान, तुलनात्मक धर्म-दर्शन, तुलनात्मक कलाएँ तथा इसके अतिरिक्त भू-गर्भ विद्या अथवा भू-निर्माण तथा भूगोल आदि हैं। इनमें से इतिहास का सर्वाधिक मूलाधार पुरातत्व है। यह सब आधार मिलकर इतिहास का निर्माण करते हैं। इसमें पुरातत्व विज्ञान सर्वाधिक नवीन है जो पिछले 100 वर्षों में विकसित हुआ है और वह आज इतिहास का एक प्रमुख आधार बन गया है। अब यहां प्रश्न उठता है कि यह पुरातत्व कैसे विकसित हुआ ? तो इसका उत्तर भी किसी तिल्लसमी उपन्यास की कहानी से कम नहीं है।

पुरातत्व का वास्तविक जनक श्लीमान एक सात वर्षीय जर्मन बालक था। एक समय वह अपने पिता से मैलेनबर्ग गांव में अन्धे कवि होमर की इलियड की कथा सुन रहा था। इलियड एक यूनानी महाकाव्य है जिसकी तुलना महाभारत से की जा सकती है। जनश्रुतियों के अनुसार इलियड और ओडिसी महाकाव्यों का संकलन और परिभाषित स्वरूप होमर नामक एक अंधे कवि ने किया था। कहानी सुनने के पश्चात् श्लीमान ने अपने पादरी पिता से पूछा– पिताजी, क्या यह कहानी सच है ? तो, पिता ने कहा- नहीं, यह गप्प है; यह साहित्य है; बहुत पुराना है और कपोल कल्पना है। इस उत्तर के पश्चात् भी बच्चा रोज अपने पिता से कहानी दुहराने को कहता। एक दिन वह अपने पिता से बोला– पिताजी, जिस कहानी का हमारे दिलओ–दिमाग पर इतना प्रभाव पड़े, वह कल्पना, वह झूठ कैसे हो सकती है; मैं इसे एक दिन

सत्य करके दिखलाऊँगा। इलियड की कहानी का उस पर इतना असर हुआ कि वह इसकी पंक्तियों की भाषा को बिना समझे व जाने गाने लगा और जब वह बारह वर्ष का हुआ तो अचानक घर से भागकर एक व्यापारी के यहाँ नौकरी करने लगा। धीरे-धीरे एक-एक पैसा संग्रह करना प्रारम्भ कर उसने यह निर्णय लिया कि वह हिसारलिक जाकर प्राचीन महानगर को खोज निकालेगा।

कुछ दिनों तक व्यापारी के यहाँ नौकरी करने पर वह केवल 100 मार्क ही जुटा पाया। अतः उसने सोचा कि 100 मार्क से क्या होगा, उसे हिसारलिक जाने के लिए बहुत अधिक धन की आवश्यकता होगी, इसलिए अमेरिका जाकर अधिक धन कमाना चाहिए। यह सोचकर वह सागर तट पर पहुंच गया, संयोग से उसी समय एक जहाज अमेरिका जा रहा था। उसने जहाज के कप्तान से बातचीत कर कैबिनों की सफाई का काम प्राप्त कर लिया, लेकिन बीच में ही दुर्भाग्यवश जहाज डूब गया और श्लीमान अमेरिका नहीं पहुचकर बड़ी मुश्किल से हौलेण्ड के एक टापू पर पहुंच गया। हौलेण्ड पहुंचकर उसने अध्ययन प्रारम्भ किया। उसने सर्वप्रथम रूसी और फिर अंग्रेजी, ग्रीक तथा लेटिन भाषा सीखी। इसी मध्य उसे मुँह माँगा अवसर मिल गया। उसको एक अमेरिकी फर्म ने नौकरी के लिए बुलाया था। इस तरह वह न्यूयार्क पहुँच गया। अमेरिका में रहकर उसने अरबों डॉलर कमाए। लेकिन वह अपना उद्देश्य भूला नहीं था। अरबों डॉलर अर्जित करने के पश्चात् उसने अमेरिका छोड़कर जाने का निश्चय किया तो अमेरिकी राष्ट्रपति ने उसे बुलाकर पूछा "सुना है, तुम जा रहे हो और कारोबार छोड़ रहे हो ? क्या अमेरिका में नहीं सोचा जा सकता ?" उसने उत्तर दिया– "ऐसा नहीं है, मैं डॉलर एक उद्देश्य से कमाने आया था, मेरा उद्देश्य केवल धन अर्जित करना न होकर उसका सही उपयोग करना था।" ऐसा कहकर उसने अमेरिका छोड़ दिया। वह पैसिफिक होता हुआ समुद्र पार कर तुर्की पहुंच गया।

तुर्की में उसने सर्वप्रथम सुल्तान से भेंट की और कहा– "मुझे तुम्हारे हिसारलिक का मैदान चाहिए।" सुल्तान ने पूछा– "क्या दोगे ?" श्लीमान

ने उत्तर दिया– "जो मांगो।" सुल्तान ने उससे हिसारलिक के मैदान की कम-से-कम कीमत मांगी तो श्लीमान ने वह चुका दी और थोड़े समय बाद वह फिर लौटकर आया और उसने सुल्तान को हिसारलिक के मैदान की दस गुना कीमत प्रदान की। इस दस गुना कीमत को देखकर सुल्तान अचम्भित रह गया।

श्लीमान हिसारलिक के मैदान में पहुंचा और उसने सोचा कि यहीं कहीं प्रियमनगर रहा होगा। वह प्रियम नगर के बारे में सोच ही रहा था कि उसे यह विचार आया कि इलियड में यह वर्णन आया है कि किस प्रकार एकीलीज ने भाले से वार करके हैक्टर को वहीं ढेर कर दिया था और फिर उसका मृत शरीर रथ के पीछे बांधकर तीन चक्कर लगाये थे तथा इससे नौ मील का घेरा हुआ था और यह स्थान समुद्र से नौ मील ही दूर था। अतः ऐसा अनुमान कर वह उस स्थान के पास गया और वहाँ पर उसने थोड़ी-सी पथरीली और ऊपर उठी हुई जमीन पर अपना डेरा लगाया।

इसके पश्चात् उसने एक लड़की से विवाह किया जो प्राचीन यूनानी भाषा जानती थी तथा जिसका नाम सोफिया था। सोफिया से विवाह कर उसने वहाँ एक कुटिया में निवास प्रारम्भ कर उत्खनन प्रारम्भ किया। यहां से उसने प्रियम के खजाने की खोज प्रारम्भ की।

आज हिसारलिक नामक स्थान एक वास्तविकता बन चुका है। पुरातत्व-वेत्ताओं ने एशियाई कोचक में सागर तट के निकट हिसारलिक नामक एक टीले की खुदाई करके वहाँ से विभिन्न कालों की दस से भी अधिक बस्तियाँ खोज निकाली हैं। यहाँ की प्रत्येक बस्ती अपने पीछे मकानों के खंडहर और फैंकी हुई या छिपाई हुई चीजें छोड़ गयी थी। वहीं ट्राय के खंडहर मिले, जिन पर आग से जलने के निशान साफ-साफ दिखाई दे रहे थे। उत्खनन द्वारा अब यह स्पष्ट हो गया है कि ट्राय नगर वास्तव में था और उसे विनष्ट किया गया था। इतिहासकारों द्वारा यूनानियों के आक्रमण की तिथि 1200 ई.पू. निर्धारित की गई है। भारतीय महाकाव्यों की भाँति ही इन यूनानी महाकाव्यों से तत्कालीन यूनानियों के सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक जीवन की

महत्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। यह सूचनाएँ इतनी अधिक महत्वपूर्ण हैं कि इस कारण ग्याहरवीं-नौवीं शताब्दी ई.पू. के काल को होमर काल के नाम से ही जाना जाता है।

श्लीमन और सोफिया को भी हिसारलिक में धीरे-धीरे मजदूरों से उत्खनन कराने पर एक रोज प्रियम का खजाना प्राप्त हो ही गया। सर्वप्रथम जो स्थल उन्हें दिखाई दिया- वह एक दीवार थी जो बहुत ऊँची निकल आई थी। इस दीवार के बारे में होमर ने लिखा है कि उसको मनुष्यों ने नहीं, जिन्नात ने, दैत्यों ने बनाया था यह दीवार अत्यन्त विस्मयकारी थी, इसमें एक-के-ऊपर-एक चट्टान रखी हुई है तथा कहीं गारा नहीं है। इन शिलाओं को ऐसे तराश कर रखा गया है, मानो पिरामिड की चट्टाने हों। इस दीवार को देखकर सदैव यह भय बना रहता था कि कहीं यह गिर न जाए। लेकिन पुरातत्वज्ञ बड़ा दीवाना हुआ करता है- वह छुरी लेकर काम करता रहा। थोड़ी देर के बाद जब उसने देखा, बहुत सारे, बहुत सारे सोने के जेवर पड़े हुए हैं। एक जोड़ा झुमके का उसने उठाया और ले जाकर बीवी के कान पर रखते हुए उसने कहा- डार्लिंग हेलन, प्रिय हेलन! और निकलने लग गई मेरे मित्रों, 8,700 चीजें सोने की, जिसमें बहुमूल्य 6 सोने के हार, 2 कंगन, 2 ताज तथा इस तरह की अनगिनत चीजें— 64 जोड़े कानों की बालियां और इसी तरह एक ही तरह की चीजें थीं।

पूर्व में मैंने आपको बताया कि किस तरह से काल का माप नहीं है। यह इतिहासकार या साधारण-जन का बनाया हुआ है। वास्तव में अतीत वर्तमान और भविष्य एक दूसरे से गुंथे हुए हैं, यही कारण है कि अगर आप खुदाई कर रहे हैं, करते चले जा रहे हैं और एक पिन मिल जाता है, जो पिन या तो जूड़े का है या पिन कपड़े में जोड़ने का है तो, आपको लगेगा — अच्छा, यह पिन है! और यह पदार्थ है, यह ब्रश है; यह मंदिर है; यह सागर है। तो आप अर्वाचीन को प्राचीन में पढ़ रहे हैं; प्राचीन को आप अर्वाचीन से समझ रहे हैं, पहिचान रहे हैं। इसलिए साधन चाहे वह जितना भी पुराना हो उसको हम आज के जीवन से पहिचानते हैं। इस प्रकार आप अतीत को भविष्य के संदर्भ में पुष्ट करने का प्रयास करते हैं।

तो हिसारलिक के उत्खनन में ये सारी चीजें मिली, बाहर निकाली गईं। संसार ने जाना कि जो विद्वान सालों से लेख लिखता और लोग हँसा करते थे यूरोप के लोग उस पर और जब उसने ये चीजें निकालीं और उसकी भी व्याख्या की तो भी किसी को विश्वास नहीं हुआ कि सचमुच ही उसको इलियड अथवा होमर का ख़जाना मिल गया है तो किसी ने विश्वास नहीं किया। वह सारा का सारा सोना लेकर यूरोप भी गया लेकिन किसीने विश्वास नहीं किया। उसने कहा,— हम विश्वास दिलाते हैं!

बस फिर लौटा, फिर कुदाल उठाई और अचरज की बात यह, मेरे मित्रों, कि उसने न सिर्फ ट्राय की नगरी की तलाश की जो इलियड की नगरी, होमर की नगरी थी बल्कि 6 नगर, 6 खज़ाने उसने और ढूँढ निकाले और लोगों ने जाना कि जिस कालवृक्ष को जिसने उलट किया ज़मीन पर. वह कालवृक्ष उसके सामने आया। जो जीवन है, वह आजका नहीं है। उसने नौ नगर और खोदे, एक के ऊपर एक बसे। यह केवल तीसरा नगर था ट्राय का और 6 सभ्यताएँ उसने पढ़ी। आपको आश्चर्य होगा कि एक ही नगर के ऊपर कैसे अन्य नगर बसते चले गए। हमेशा पुरातत्व ने कुछ ऐसी चीजें निकाली हैं जिनको हम लोग स्वयं - सिद्धि की तरह से स्वीकार कर सकते हैं। याने कि, जैसे नगर के ऊपर नगर बसता है; गाँव के ऊपर गाँव बसते गये हैं। नया गाँव कब बसा है? उसी गाँव पर, नगरी के ऊपर नगरी बसी है और यही सत्य उसने खोज कर निकाल कर रख दिया था। और, तब से वह श्लीमान पुरातत्व का जनक कहलाया और पुरातत्व का विज्ञान संसार में चला। और, इतिहासकारों को इससे बड़ा लाभ हुआ; क्योंकि उन्होंने जाना सत्य काव्य में भी बोला जाता है।

इस प्रकार यह तो श्लीमान विवरण हुआ, अब मैं आपके सामने पुरातत्व की एक और कहानी कहने जा रहा हूँ। जो, जितने भी तिलस्म आपने पढ़े होंगे सबको, अगर वे सामने हों तो गूँगा कर दें, अपने चमत्कार से। तो जो नाम मैं लेने जा रहा हूँ, वो मिस्त्र के तूतनखामान का है। तूतनखामन 18 साल की उम्र में मर गया। 1350 ई० पूर्व, आज से करीब 35 सदी पहले वो मर चुका था। उसकी एक प्रिया थी 16 साल की, उसका नाम आमस खामन

था। दोनों में बड़ा प्रेम था। बड़ा दुःख हुआ कि वह मर गया, भरी जवानी में मर गया वह – 18 साल की उम्र में।

ज़रा ख़याल कीजिए पुराविद् के तत्वावधान का, उसके समीक्षक का, उसकी बरदाश्त का, उसके धैर्य का, उसकी निर्भयता का। ज़माने से लिखा जा रहा था और आप अगर ज़माने से अख़बार पढ़ते रहे हों तो शायद आपको याद हो। मैं भी बच्चा था लेकिन मैंने पढ़ा था; बारह साल का था मैं ! सन् 22 का किस्सा है जो अख़बारों में निकलने लगा। तूतनख़ामन की कब्र उससे पूर्व जिसने भी खोदी सभी मृत्यु के ग्रास हो गये —। क्योंकि तूतनख़ामन की ममी पर लिखा हुआ है कि— "तूतनख़ामन यहां सो रहा है, कोई उसकी निद्रा भंग न करे; जो उसकी निद्रा को भंग करेगा, उसकी निद्रा को अशांत करेगा, वह अकाल ही कालका ग्रास बन जाएगा।" और फिर, 'देश सेवक' ने निकाला कि लॉर्ड हैंड्सबनी 'अनायास अपने मकान की सातवीं मंज़िल की खिड़की से कूद कर मर गये। ये दूसरे काल के ग्रास हुए थे। विक्सतरेगा का लड़का, जो हावर्डटार्जन था, जिसने तूतनख़ामन की कब्र खोदी थी; वह अच्छा - खासा शाम को,- रात को बाथरूम में घुसा और जब सुबह तक नहीं निकला तो लोग कह उठे अनायास, मर गया। और, हावर्डटार्जन का साझीदार लॉर्ड मोरन, इंगलैंड का रहने वाला था; उसकी तो पत्नी गई, भाई गया क्योंकि सबने हाथ लगाया था उसमें; उसकी बहिन भी गई।

चाहे जितने प्रयत्न किए गए अख़बारों में वैज्ञानिक कारण बताने के; कोई ज्वर से मरा, कोई हैजे से मरा, कोई किसी से मरा, तपेदिक से मरा। पर किसी ने विश्वास नहीं किया। अख़बार यही लिखते रहे। वहीं कार्टर अमेरिका से आकर यहां बैठा; क्योंकि बहुत ज़माने से इस बात की कोशिश हो रही थी कि तूतनख़ामन की कब्र खोद ली जाए, उसे पहिचान ली जाए। बड़े-बड़े राजा और महाराजा वहां हुए थे, उनकी ममियाँ निकाल ली गई थीं। यूरोप के, अमेरिका के, काहिरा के संग्रहालयों में ये सुशोभित हुई थीं। लेकिन तूतनख़ामन, जिसका ज़िक्र बराबर चला आ रहा था; उसकी कब्र अपराजेय मानी जाती थी, ऐसा लोगों का विश्वास था। लोग उसकी खोज में पड़े।

सालों बीत गये। 1868 से उसकी खुदाई हो रही थी लेकिन कुछ पता

नहीं चल रहा था। हावर्ड कार्टर आया और रूखसर नाम की जगह, जहाँ बड़े-बड़े प्राचीन मंदिर बने हुए हैं, वहाँ वह बैठा हुआ था। शाम को उसके साथियों ने, मजदूरों ने आकर बतलाया कि वहां आदमियों ने डाका डाला है। आपको यह लगेगा कि यह मजाक है कि कब्रों के ऊपर भी डाके डाले जाते है ! अत्यन्त प्राचीन काल में, मिस्र का इतिहास कहता है कि लोगों ने कब्रों पर डाके डाले थे। क्योंकि वे जो कब्रें थीं उनमें सोना भरा हुआ था। इन्सान मरना नहीं चाहता मेरे दोस्तो ! इसीलिए परलोक की कामना ज्यादा करता है। जो, धन कमाता है दूसरों का शोषण करके धन कमाता है, वह उनसे कहना चाहता है – जिनका शोषण करता है – तुम्हारे लिए महल वहां बना होगा, इसलिए भला काम करो, ईमानदारी से काम करो, सेवा करो, वहां सुख मिलेगा; यहाँ नुकसान हो जाए, मगर वहां लाभ मिलेगा। खैर, जैसे भी हो मनुष्य ने समझौता कर लिया है। वहाँ वाले भी समझते थे कि गति यहाँ के जीवन में नहीं है, गति वहाँ के जीवन में है और बड़े-बड़े इरादे बनाए। एक खर्चा यहाँ नहीं किया उन्होंने अपने जीवन में; वह खर्च उन्होंने, पिरामिड़ों के बनाने में किया– जहां वह मर कर भी जिन्दा रहें। और, शव के साथ अनन्त समृद्ध चीजें रखी जाएँ, सोना - चांदी, सभी कुछ; सारा वैभव रखा जाए।

और,दूसरी चीज जो पुरातत्व ने ढूँढी है,जैसाकि अन्य स्थानों की कब्रों में है, जहाँ पर कि राजा मरता है या रानी मरती है; वहाँ जो कब्रें मिलीं उनमें दास-दासी भी घुटने टेके हुए हैं। सामने जहर का प्याला रखा हुआ है। उनका मरना जरूरी था वरना स्वामी मरने के बाद यात्रा पर जाता, जो अनन्त यात्रा है; तो उसकी सेवा कौन मार्ग में करता ? क्योंकि वह तो मर चुका है मगर दफ़न उनको भी होना पड़ेगा—यह कब्रें ईसा से तीन हजार-चार हजार साल पहले दफ़नाई जाती थीं।

इसी प्रकार तूतनखामन की भी बड़ी शोहरत थी। इन्डो ग्रीक वगैरह ने कहा था कि तूतनखामन का जो मजार है वह बहुत बड़ा है और बहुत धन है उसमें। मगर उसको किसी ने पाया नहीं। हावर्ड कार्टर उसके चक्कर में चला और उसने लॉर्ड कॉरपोरल, जो इंग्लैंड का था, उससे साझा किया और

दोनों जाकर बैठे। कारपोरल चला गया इंग्लैंड, हावर्ड बैठा रहा।

आकर बताया लोगों ने, अबुल कैद के आदमियों ने कि कब्र पर डाका डाला गया है। रात का वक्त था। हावर्ड ने अपने आदमियों को ले जाकर देखा कि एक कब्र है। कब्र के भीतर एक डोरी गई हुई है। लोगों ने बताया कि आठ आदमी यहाँ उतरे हैं। दो कबीले लड़ गये थे कि हम पहले जाएँ हम पहले जाएँ—इस तरह। और, एक कबीला समूचा मार डाला गया था, दूसरा कबीला समूचा उतर गया था कब्र के भीतर। हावर्ड को लोगों ने रोका उसने कहा— नहीं मैं अकेला जाऊँगा। कोई मेरे साथ मत आना। मैं अकेला ही उतरूँगा नीचे; चाहे वह हत्यारे हों, मगर जाऊँगा मैं अकेला ही। मुझे मालुम है, खून-खराबा हुआ है। तलवारें पड़ी हुई हैं, लाशें पड़ी हुई हैं। मगर मुझे तो कब्र में उतरना है। और उसने पहला काम जो किया वह यह किया कि जिस डोरी से वह उतरे थे उसे उसने काट दिया— उनकी निकलने की राह खत्म हो गई और खुद वह अपनी डोरी लेकर अन्दर उतरा। सीधा खड़ा हुआ दिखा एक निहत्था आदमी। पैनी तलवारें उनके हाथ में थीं और दीपक जल रहा था। उनके सामने खड़े होकर उसने कहा– तुम्हारा अकेला ज़रिया जो ऊपर जाने का था, खत्म कर दिया गया है। अगर ऊपर जाना चाहो तो, जो जरूर चाहो मेरे कहने से वरना सब के सब पकड़े जाओगे और मारे जाओगे। मरे हुए की कब्र पर डाका डालना बड़ा बेजा समझा जाता है दुनियाँ भर में। दूसरे, तुमने हत्या की है लोगों की। सब-के-सब यहीं पकड़े जाओगे। ऊपर जाना चाहो तो यह डोरी जिससे मैं आया हूँ, तुम्हारी नज़र है, हाजिर है- इससे जाओ।

ऐसी घबराहट पैदा हुई कि सब-के-सब चले गये और हावर्ड वहाँ अकेला बच गया। उसने डोरी नीचे से हिलाई। एक आदमी नीचे उतरा उसका। उसने कहा, मैं अकेला यहाँ रहूँगा। बहुत समझाया लोगों ने लेकिन उसने कहा, मैं रुकने का नहीं। वह जमा रहा। दूसरे दिन उसने मलबा हटाया; सारा हटाया उसने और उसके बाद उसने देखा कि सीढ़ियाँ नज़र आ रही हैं। हटाने लगा वह मलबा; सीढ़ियाँ एक के बाद एक चली गई थीं। बारहवीं सीढ़ी तक जब वो आया तो उसने देखा कि जो दरवाज़ा बन्द है और जिसके ऊपर कब्र का

निशान पड़ा हुआ हैं और जिसके ऊपर सील लगी हुई है— कब्र की मोहर वहाँ हुआ करती थी और जिसमें एक छोटा-सा सियार था। सियार का होना अपने यहाँ भी बड़ा अशुभ माना जाता है। तो, सियार और 9 कैदियों का निशान था— यही उस ज़माने में तूतनख़ामन की कब्र की मोहर हुआ करती थी। उसने समझ लिया कि इसमें कब्र है। मगर किसकी है यह; यह पता नहीं। यह बताया गया था कि उसे; पुराने ज़माने की चीज़ें पढ़ कर यह जाना था उसने कि जो पश्चिमी सरहद कहा जाता है, जैसे हमारे यहाँ दक्षिण दिशा यम की दिशा मानी जाती है— मरने वालों के पैर दक्षिण में करके निकाले जाते हैं। उसी प्रकार उनके यहाँ दफनाने की दिशा पश्चिम है क्योंकि मृतक को पश्चिम में ही दफ़नाया जाता है। उसने समझ लिया कि कुछ अजब नहीं जो तूतनख़ामन की कब्र हो यह। उसने कब्र को देखा, और वह लौट आया। रात को कॉरपोरल को तार किया; उसमें लिखा— जल्दी आ जाओ, कुछ नज़र आया है। कॉरपोरल आया; उसके बाद पहुँचा वहाँ और मलबा हटाया। सौलहवीं सीढ़ी पर जब वह गया तो पूरा दरवाज़ा नज़र आया। सुराख उसने देखा और उसमें टार्च डाला, सुराख इतना बड़ा था कि टार्च उसमें जा सके। देखा उसने, भीतर एक गलियारा है लम्बा - सा, करीब ग्यारह फुट का और सामने एक और दरवाजा है, जहाँ बहुत सारे पत्थरों का ढेर है। फिर नज़र गई उसकी उस ताले के ऊपर जिस पर मोहर पड़ी हुई थी और उसका हृदय एकदम बैठ गया।

उसने देखा, अरे; मुझसे पहले लोग - बाग आ चुके हैं यहाँ। मुझसे पहले लोग अन्दर जा चुके हैं। इसका मतलब यह कि इस पर डाका पड़ चुका है। अत्यन्त प्राचीन काल से यहाँ डाके पड़ते चले आए हैं। अब मैं क्या करूँगा? मगर कॉरपोरल आ गया था। दिलासा दिया उसने। खोला उसने। चला गया अन्दर। उसने एक चीज़ दिखाई कि तुमने वह चीज़ नहीं देखी— कि, दो बार यह बन्द हुआ है। एक सील तोड़ी गई है और फिर प्राचीन काल में मोहर लगाई गई है। इसलिए उसने कहा कि यह तभी की मोहर है ज़रा ख़्याल करो। तब उसकी जान में जान आई और उसने सोचा, अगर उस ज़माने से बन्द है तो कुछ ख़ास मंशा रही होगी इसे पुनः बन्द करने की। क्योंकि वे ले

गये होते, निकाल कर ले जाते तो फिर उसे बन्द करने की क्या ज़रुरत थी ?

इसके बाद, फिर खुदाई हुई और इसके बाद जो है वो दरवाज़ा अलग किया गया। दरवाज़ा अलग हुआ, अन्दर घुसे। देखा कि दीवार खड़ी हुई है। पत्थरों की यह दीवार जोड़ी नहीं गई है, वैसे ही पत्थर रख दिए हैं जमा के। धीरे-2 पत्थर हटाये गये। पत्थर हटाये तो दूसरा दरवाजा दिखाई दिया। अब तक जितने भी जानने वाले थे बड़े-बड़े, बाहर से आने वाले, जिनमें बहुत माहिर और पंडित माने जाते थे मिश्री — पुरातत्व के; जिन्होंने चित्र-लिपियाँ पढ़ी और सब कुछ पढ़ा था — वे सारे लोग और जो वैज्ञानिक लोग थे; वे सब के सब आए वहाँ पर मदद करने के लिए। कॉरपोरल खड़ा हुआ, पत्नी ऐलिया खड़ी हुई पीछे और बहन और जो दूसरे लोग आए थे सारे पीछे खड़े रहे और उसने मोमबत्ती डालने के लिए एक सुराख किया दरवाजे में ताकि विषैली गैस निकल जाये। मोमबत्ती का असर अच्छा होता है, विषैली गैस को उसने बाहर निकाला। जब गैस बाहर निकल गई, उसने कहा कि रात हो चुकी है, कल दिन को आएँगे।

व्यग्रता बढ़ी थी, इतना धैर्य नहीं था कि लौटें मगर सब्र। दूसरे लोग लौट गये, अँधेरा गहरा काफी था मगर वह नहीं लौटा। दूसरे दिन जो और लोग आये थे, बड़े-बड़े, अमेरिका से दौड़े आ रहे थे - बहुत धन लेकर आये, जितने धन के खर्च की जरूरत होगी वह हम देंगे क्योंकि तूतनख़ामन की कब्र बड़े महत्व की चीज हो गई है।

उसके बाद सुराख़ उसने बड़ा किया और एकदम चुप हो गया। पीछे से लोगों ने धक्का दिया, क्या बात है, कॉरपोरल बोला—"Tarzan, you tell me, what you are watching ?" पागल हो जाऊँगा अगर तुमने नहीं बताया कि भीतर क्या देख रहे हो ! वह धीरे से कहता है– देख रहा हूँ अचरज, जो मेरे ही जीवन का नहीं है, मनुष्य जाति के जीवन का अचरज है वह देख रहा हूँ।

टार्जन को अलग किया वहाँ से कॉरपोरल फिर वहाँ गया। उसके बाद एक-एक करके लोग आते गये। उन्होंने देखा– सोने का अम्बार पड़ा हुआ

है। दरवाज़ा हटाया गया। यह दूसरा दरवाज़ा था। दूसरे दरवाजे पर देखी दूसरी मोहर, पहली वाली मोहर तोड़ कर दूसरी लगाई गई थी। उसने कहा- गजब हो गया। ये अन्दर घुसे हैं, लेकिन हमने देखा है कि ताला लगा है, ज़ाहिर है कि सोना नहीं ले गये हैं। क्यों नहीं ले गये हैं? और फिर मोहर लगाकर कैसे गायब हो गये? यह चीज बराबर मन में आती थी।

जब दूसरे दरवाजे के अन्दर गये तो उन्होंने ऐसे टुकड़े पाये जिन पर तूतनख़ामन का नाम भी लिखा था, बड़े–बड़े सम्राट जो हो गये हैं, उनका भी लिखा था। तो, उसने सोचा; यह तो बड़ी बेजा बात हुई। इतनी कब्रें यहाँ हैं, क्या सभी लोगों की कब्र हैं यहाँ पर? फिर समस्या का समाधान कैसे मिलेगा? खैर, बहुत धीरज के साथ अन्दर घुसे तो देखते क्या हैं कि सोने के पोर्च, सोने के सिंहासन, सोने की बड़ी-बड़ी मूर्तियां हैं। उसके बाद एक रैलिंग और एक दरवाजा था। रैलिंग सोने की थी और उसके पास एक दरवाजा था और उस दरवाजे के दोनों तरफ दो मूर्तियाँ खड़ी हुई थीं, नारी मूर्तियाँ कंगन पहने हुए, सोने का ताज सिर पर था और मिस्त्र देश का प्रतीक था राजत्व का, वो सर्प सोने का, सिर के ऊपर एक-एक सर्प दोनों लगाए हुए। उन दोनों के बीच में एक दरवाज़ा और दिखाई पड़ा। उधर की तरफ बढ़े सब के सब। देखा, नीचे सोने के सिंहासन भी रखे थे, तो, उस दरवाजे की तरफ सब की नज़र गई। देखा कि दोहरी मोहर लगी हुई है। आप अन्दाज़ नहीं लगा सकते मेरे दोस्तों, कि क्या उसके दिल पर बीत रही थी, जब बार-बार यह चीज आती थी कि दोहरी मोहर बाहर लगी हुई है। यानि कि तूतनखामन मिलेगा नहीं। उन्होंने वह दरवाजा तोड़ दिया। दरवाजा हटाया और देखा गया कि रैलिंग दौड़ रही हैं; एक के बाद एक दौड़ती चली जा रही हैं, दौड़ती चली गई हैं। सामने दीवार चट्टान की तरह खड़ी है सोने की। वेदिकाओं को पार किया। पार करके आगे बढ़े। उसमें एक द्वार निकला तो उस द्वार के ऊपर तूतनखामन की मोहर लगी हुई थी; वैयक्तिक, और दूसरी कोई मोहर नहीं थी।

यहाँ, क्या कारण था कि और सब चीजें बिखरी पड़ी थीं। जो भांडे थे, बर्तन वगैरह थे सोने के; सारे उलटे पड़े थे, इधर-उधर पड़े थे। सिंहासन

जो थे वह नीचे उतार लिये गये थे। यह क्या कारण है? किसी की समझ में नहीं आया कि या तो हमला हुआ होगा उनके ऊपर या कोई बात हुई होगी। जिससे डाकुओं को भागना पड़ा। वो निकल तो गये लेकिन कोई चीज ले नहीं जा सके। सब चीजें वैसी की वैसी पड़ी हुई थीं।

अब उन्होंने फिर खोला। अन्दर घुसे तो देखा कि बड़ा सा कमरा है– 18 फुट लम्बा, 11 फुट चौड़ा और सोने का है। फिर अन्दर घुसे और देखा कि एक बड़ा सा ताबूत पड़ा हुआ है 8 फुट लम्बा, 4 फुट चौड़ा और 4 फुट ही ऊँचा। सोने का था वह। बहुत बड़े-बड़े, जियॉलोजिस्ट जो सोने को जानने वाले थे, वहाँ थे। चित्र विद्या को जानने वाले सारे के सारे वहाँ आये थे और सब के सब देख रहे थे उसको। सभी मनन कर रहे थे। छः साल लगे जब 84 टुकड़े उठाये जा सके। आप याद रखें कि अगर आपको कोई चीज़ दीख जाए 3-4 हज़ार साल पुरानी तो उसको हाथ लगाने की जल्दी न करें। अभी, वो जो चीज़ दीख रही है, आँखों को स्वीकार है, जहाँ उँगली से उसे छुआ कि बिखर गया वह। बड़ी सावधानी से देखना पड़ता है। 6 साल लग गये उन चीजों को उठाकर ले जाने में। और, जब उन्होंने वह ताबूत खोला तो उसमें ऊपरी हिस्सा पत्थर का था और उसका ढक्कन सोने का था। ताबूत के अन्दर पत्थर का ताबूत जो रोजवुड की शक्ल का था; गुलाबी रंग का पत्थर था। उसके बाद उसको हटाया, फिर सोने का ताबूत दिखाई पड़ा जिसका मुखड़ा जो था वो तूतनखामन का था जिसके दोनों हाथ राजदण्ड पकड़ें हुए छाती के ऊपर थे। राजदण्ड में नीलम जड़ा हुआ था। आँखों की भौंहों पर भी नीलम जड़े हुए थे और जवाहरात से सारा बदन भरा हुआ था। और दो सीढ़ियाँ, पंख वाली देवियाँ बनाई गई थीं जो सावधान कर रही थीं कि खबरदार, तूतनखामन की नींद में विघ्न मत करना, उसे जगाना नहीं, कोई छेड़े नहीं वरना वह काल के ग्रास में अकाल चला जाएगा- यह उस पर लिखा हुआ था। पुराविद् तो डरता नहीं किसी चीज से। उसने फिर खोला और तब जाकर ममी दिखाई पड़ी। अब जितने भी प्राणिशास्त्र को जानने वाले थे, जितने नृतत्वशास्त्र को जानने वाले थे; वे सभी वैज्ञानिक सामने आये और उन्होंने देखा कि इतना ज्यादा मसाला लगा दिया गया है

उसके शरीर का ऊपरी भाग पूरी तरह ढक गया है । मगर पहली बार 3700 साल के बाद मनुष्य ने मनुष्य को देखा। आप अन्दाज लगा सकते हैं कि कितनी डरावनी खामोशी होगी उस वक्त, कोई किसी से बोलता नहीं था, सब कोई देख रहे थे, ताक रहे थे। मौत की-सी खामोशी मेरे मित्रों ! बेजा नहीं लगती, क्योंकि मौत, सब जानते हैं कि आवाज कहाँ होती है ! लेकिन जब कॉन्शस आदमी, भीड़ में जब चुप हो जाता है तो बड़ी भयावह स्थिति हो जाती है। वही स्थिति थी और उस स्थिति में उन्होंने उसको खोला। और, पहली बार करीब चार हजार साल के बाद मनुष्य ने, जीवित मनुष्य ने मरे हुए मनुष्य को छुआ, जो मृत्युंजय हो गया था। शव था, मगर मृत्युंजय शव। एक दिन लाश घर में रह जाए तो कैसी बास आने लग जाती है ! गज़ब था उस दवा का ईजाद जिसके कारण तूतनखामन 3700 वर्ष के बाद, 37 सदियों के बाद वहाँ पड़ा हुआ था।

मुझे ख्याल है, मैं समरकंद में था। मेरे साथ सोवियत संघ के पुरातत्व विभाग का निदेशक था। वह मुझे तैमूर की कब्र दिखा रहा था। मैंने पूछा, अभी हाल ही में थोड़े दिनों पहिले अखबारों में खबर आई थी कि बाढ़ आने के कारण तैमूर की कब्र में पानी घुस गया था। क्या आप उस वक्त वहां थे ? उसने हां में सर हिलाया और कहा कि उस वक्त मैंने ही तैमूर का ताबूत संभाला था। मैंने पूछा, क्या आपने ताबूत खोला था ? उसने नहीं में उत्तर देकर आगे कहा कि ताबूत खोलने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी थी, क्योंकि ताबूत का ढक्कन अलग हो जाने से शरीर और ताबूत अलग - अलग हो गए थे। मैंने फिर उससे पूछा कि क्या आपने तैमूर का शरीर देखा और छुआ था ? उस तैमूर का शरीर जिसने चीन की सरहद से लेकर के आधा उत्तर भारत जीत लिया था और हमारी माया नगरी हरिद्वार तक आ कर फिर लौट गया था, जिसने मस्कवा तक जीत लिया था और जिसके द्वारा सारा एशिया जीत लिया गया था। उस तैमूर को आपने हाथ से छूआ था ? निदेशक महोदय ने कहा-हाँ ! मैंने उसे अपने हाथ से छूआ था। मैंने पूछा, उसका शरीर कैसा था ? तो उन्होंने कहा— खाली हड्डियाँ बची थीं और उसकी दाढ़ी पर थोड़ी सी चमड़ी बची हुई थी। मैंने फिर पूछा— कैसी थी उसकी चमड़ी ? तो उन्होंने

उत्तर दिया— दाड़ी पर केवल तीन बाल बचे थे ! मैंने कहा, अफसोस– केवल तीन बाल बच रहे थे उस आदमी के शरीर में जिसने एशिया को न केवल जीता, वरन् खून की धार रुलाया था।

यहां पर तोल्स्तोई की कहानी का वर्णन करता समीचीन होगा। आपको मालूम है — मनोरथों का अन्त नहीं होता — आपके जीवन का अन्त हो सकता है, मनोरथों का अन्त नहीं होता। तोल्स्तोई ने एक आदमी को देखा, उसकी कहानी लिखी। उस आदमी का बड़ा घर हो, बड़ी जमीन हो। तोल्स्तोई ने कहा, हमने अपनी सारी जमीन छोड़ दी है; आपको मालूम है कि वह प्रिंस कहलाता था - वह बहुत बड़ा जमींदार था। उसने कहा—हमने अपनी सारी जमीन छोड़ दी है, तू दौड़, और दिन भर तू जितना दौड़ेगा, जितना लांघ जाएगा, उतनी जमीन तुझको दे दूंगा। आदमी दौड़ने लगा, दौड़ने लगा और मनोरथ ऐसा, कामना ऐसी, तृष्णा इस कदर कि वह दौड़ता-दौड़ता गिर कर मर गया। तोल्स्तोई ने कहा, तुम्हारे भाग्य में लिखी थी खाली तीन हाथ की जमीन, जहाँ तुम दफनाये जाओगे, उतनी ही जमीन तुम्हारी है। क्योंकि तुम ले नहीं सकोगे सारा।

तो, यह स्थिति थी तैमूर की। खैर, तो हम तूतनखामन की बात कर रहे थे। उसका सारा शरीर ममी वाले कपड़े से बंधा हुआ था और उसके ऊपर जो सिर था उसमें जवाहारात भरे हुए थे। उसके सिर में भरे हुए जवाहारातों की संख्या 147 गिनी गयी है। लेकिन एक सर्वाधिक कीमती चीज भी मिली थी, जिसका वर्णन किसी भी पुराविद् ने नहीं किया है, वह थी "भूला हुआ रत्न"। मैंने इसके बारे में एक फ्रांसीसी साप्ताहिक पत्र में लिखा था। वह रत्न था—फूलों का गजरा जो उसकी 16 वर्षीया पत्नी ताबूत बन्द होते समय तूतनखामन के सिर पर डाल गयी थी। आपको आश्चर्य होगा कि है न तिल्लसमी बात कि वह गजरा आज भी कायम है। उसके फूल सूख गए हैं, अगर आप छूएँ तो वह अभी ढेर हो जाएँ परन्तु उन फूलों का रंग आज भी बना हुआ है। आज भी काहिरा के म्यूजियम में उस फूलों के गजरे को देखा जा सकता है।

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि इतनी विचित्र और क्लिष्ट

लिपियां कैसे पढ़ी गयीं ? यह काम भी पुराविदों का है, पुरानी लिपियों को पढ़ना। कैसे पढ़ा गया यह सब ? इन प्राचीन लिपियों को पढ़ने का कार्य एक फ्रांसीसी शेंपोलियों ने किया था।

नेपोलियन ने जब मिस्र विजय किया था तो वहां उसे एक रोजेटा-स्टोन प्राप्त हुआ था। मिस्र की नील नदी की सात धाराएँ हैं– उनमें से एक धारा रोजेटा नाम से जानी जाती है उसी राजेटा के तट पर एक पत्थर मिला था, इससे उसका नाम रोजेटा-स्टोन हो गया।

उस रोजेटा स्टोन पर मिस्त्री और यूनानी भाषाओं में अभिलेख खुदे हुए थे, जिनमें राजा के नाम के गिर्द आयात खींचा हुआ था। यूनानी और उस काल में ज्ञात दूसरी प्राचीन भाषाएँ जानने वाले एक युवा फ्रांसीसी विद्वान शेंपोलियों का अनुमान था कि राजा के नाम में हर चित्राक्षर किसी निश्चित अक्षर का द्योतक है, किंतु जिसमें कुछ स्वरों को छोड़ दिया गया है। विभिन्न भाषाओं के अभिलेखों की तुलना करके शेंपोलियों ने कुछ चित्राक्षरों का अर्थ मालूम कर लिया। इस काम में उसे एक अन्य पत्थर पर खुदे अभिलेख से बड़ी सहायता मिली, जिसमें एक ऐसे नारी नाम के गिर्द आयत बना हुआ था, जिसे वह जानता था। ज्ञात अर्थ वाले चित्राक्षरों का इस्तेमाल करके शेंपोलियों फिर थुत्मोस और दूसरे फिराऊनों के नाम भी पढ़ने में सफल हो गया। इस तरह प्राचीन मिस्री लेखों को पढ़ा जाना आरम्भ हुआ। शेंपोलियों के काम को दूसरे विद्वानों ने जारी रखा। आज प्राचीन मिस्री लेख पहेली नहीं रह गए हैं। पेपाइरस और पत्थर पर लिखे हुए हजारों प्राचीन मिस्री लेख अब तक पढ़े जा चुके हैं।

तो यह शेंपोलियों जब विश्वविद्यालय में प्रवेश लेने गया तो विश्वविद्यालय के अधिकारियों ने कहा कि तुम अभी बहुत छोटे हो, तुम्हें प्रवेश मिलना सम्भव नहीं होगा। तुम कुछ परीक्षाएँ दे सकते हो। उसने हामी भर दी। परीक्षा देते वक्त उसे यह अनुभव हुआ कि वह परीक्षा देने वालों से अधिक जानता है, परिणाम यह हुआ कि उसे प्रोफेसर बना दिया गया। और वह सचमुच बहुत विद्वान निकला। उसने प्राचीन लिपी पढ़ने के क्रम में जो नाम सर्वप्रथम पढ़ा, वह क्लियोपट्रा का था।

मिस्त्र में जिस तरह से शेंपोलियों ने प्राचीन मिस्त्र की लिपि पढ़ी थी, उसी प्रकार प्राचीन भारतीय ब्राह्मी लिपि पढ़े जाने का भी एक रोचक किस्सा है।

जेम्स प्रिंसेज नाम का एक आदमी था, उसने ब्राह्मी लिपि को पढ़ने का बीड़ा उठाया। ब्राह्मी लिपि भारत की प्रारम्भिक लिपि है तथा इसमें सम्राट अशोक, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य और समुद्रगुप्त के अभिलेख लिखे हुए प्राप्त हुए हैं। कहा जाता है कि वह पढ़ते-पढ़ते पागल हो गया था। रोज वह कोई अर्थ निकाले और रोज ही मालूम हो जावे कि वह गलत है। वह 12 वर्ष तक पढ़ने का प्रयत्न करता रहा तथा वह इन वर्षों में लगातार गलत ही लिखता पढ़ता रहा। लेकिन 18 वें वर्ष में एक रोज रात को दो बजे उसने अपनी पत्नी को जगाया। पत्नी ने कहा- सो जाओ। उसने कहा- सुनो। पत्नी ने फिर कहा- सो जाओ, सो जाओ, मैं जानती हूँ, तुम पागल होना चाहते हो, तुम्हारी प्रतिदिन की यही कथा है. सो जाओ। प्रिंसेप ने कहा- तुम एक बार सुन लो, फिर चाहे मत सुनना। उसने कहा- क्या ? तो प्रिंसेप बोला- सांची के प्रस्तरों में 'आ' और शायद 'द' लिखा हुआ है, क्योंकि 'द' जिस तरह से लिखा जाता है वह उसका ठीक उल्टा है और उसमें 'आ' की मात्रा लग रही है, इसके बाद एक और संरचना है जो संभवतः 'न' प्रतीत होता है। अतः, संभवतः यह शब्द 'दान' हो। इस तरह से प्रिंसेप की सफलता की कहानी प्रारम्भ हुई और उसने 'दान' से पढ़ना प्रारम्भ कर अभिलेख का सम्पूर्ण पाठ पढ़ कर समाप्त किया। इन लेखों को फिरोजशाह तुगलक के समय से पढ़े जाने का प्रयत्न हो रहा था और इन्हें 18वीं-19वीं शताब्दी में पहली बार पढ़ने का श्रेय जेम्स प्रिंसेप को प्राप्त हुआ। इस प्रकार जेम्स प्रिंसेप के प्रयत्नों से अशोक के जितने भी अभिलेख थे, वह पढ़े गये।

तो, इस प्रकार से पुरातत्व इतिहास का आधार बना। मैंने यह सब कहानियाँ आपसे इसलिए कहीं कि आप सामान्य रूप से यह समझ सकें कि पुरातत्व कैसे बना ? उसका विकास कैसे हुआ ? पुरातत्व के इतिहास में ऐसी अनन्त अद्भुत चीजें हैं, चलते-चलते मैं ऐसी एक कहानी और बता रहा हूँ।

आपने हरकुलिनियन का नाम सुना होगा। हरकुलिनियन का नहीं तो पॉम्पेई का नाम अवश्य सुना होगा। पॉम्पेई नामक इस नगर को पॉम्पेई ने बसाया था। वह जूलियस सीजर का सेनापति था। किसी वजह से दोनों में ठन गई और पॉम्पेई को भागना पड़ा क्योंकि जूलियस सीजर ने पॉम्पेई को पाथेसर के मैदान में युद्ध में हरा दिया था। पॉम्पेई नगर से भाग कर मिस्त्र पहुंचा मिस्त्र में जूलियस सीजर भी चला गया। उस समय मिस्त्र की रानी क्लियोपट्रा थी। वही क्लियोपट्रा जो बहुत मशहूर है कि अगर जितनी लम्बी उसकी नाक थी उतनी ही लम्बी नाक से जरा और लम्बी होती तो रोम में बड़े-बड़े सरदार और सेनापति उसके चुंगल में आने से बच गये होते। क्लियोपट्रा की जरा-सी नाक की यह कैफियत है। तो पॉम्पेई ने मिस्त्र में शरण ली, इसी बीच जूलियस सीजर के वहाँ आने पर क्लियोपट्रा के पति ने पॉम्पेई का सिर कलम कर तश्तरी पर रखकर मेजपोश से ढक कर जूलियस सीजर को दिया, इस तरह मिस्त्र भी बच गया।

नेपुलस नगर के निकट व्हिलस नाम का एक ज्वालामुखी पहाड़ है और इस पहाड़ के निकट हरकुलिनियन और पॉम्पेई दो नगर बसे हुए हैं। आगस्टस सम्राट ने मृत्यु के समय कहा था कि दोस्तों! हमने रोम मिट्टी का पाया था और हमने उसे संगमरमर का बना दिया। वास्तव में पॉम्पेई ने हरकुलि-नियन और पॉम्पेई को संगमरमर का बना दिया था। असलियत में इन दोनों नगरों में सैंकड़ों ही नही हजारों व लाखों संगमरमर की वेदिकाएँ बनी हुई हैं। अब इसका काफी भाग गिर गया है, परन्तु इसके वैभव को देखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यह क्षेत्र कभी अभिजात्य वर्ग का निवास स्थल रहा होगा। वास्तव में रोम उस समय विश्व का समृद्ध केन्द्र था, उस समय रोम में भारत से मलमल, मोती, गरम मसाले आदि अनेकों वस्तुएँ बिक्री के लिए जाती थीं। रोम की समृद्धि का पता इस एक उदाहरण से स्पष्ट होता है—एक समय विजीगाथ नाम का एक व्यक्ति रोम को जीतने के लिए गया और उसने जब रोम जीत लिया तो रोम के उच्चवर्ग का प्रतिनिधि-मण्डल उससे मिला कि तुम्हें रोम छोड़ने के लिए क्या चाहिये? तो उसने

उत्तर दिया- मुझे तीन हजार पौण्ड काली मिर्च चाहिये। रोमवासियों ने उसकी इस मांग को स्वीकार कर लिया और वह विजीगाथ नाम का व्यक्ति वापिस लौट गया। ऐसा विचित्र नगर था- रोम।

इसी तरह की एक और कहानी है। जर्मनी में एक एलेक्सर राजा था और उसकी बेटी मारिया स्टेना का विवाह नेपल्स के राजा से हुआ था। उसे प्राचीन ग्रीक पढ़ने का शौक था, इसमें उसे पॉम्पेई का वर्णन बहुत अच्छा लगता था। एक दिन उसके बगीचे की जमीन समतल नहीं हो रही थी तो उसने जमीन को फावड़े से खोदने का आदेश दिया। जैसे ही फावड़े से खोदा गया तो एक मानव-सिर निकल आया। उसने व्यग्रता के कारण और उत्खनन करवाया। उत्खनन के बाद जो वस्तुएँ मिलीं उनमें तांबे की घोड़े पर बनी हुई मूर्तियाँ थीं। इस तरह पॉम्पेई नगर की खोज हुई।

एक दिन अगस्त की 24 तारीख थी और ईसा का 79वां वर्ष था- और श्रीमान लोग वहाँ अधिक देर तक रुके थे। जब भी धन नगर में बहुत बरसने लगता है, तो रात में आदमी की नींद खुल जाती है, आदमी लोभी बन जाता है। तो श्रीमान् लोग भी जहाँ धन बरसने लगता है, ऐसी कैफियत से जीवन बिताते हैं — रात को जागते हैं, दिन में सोते हैं। तो यह सब हुआ। वे चोगा पहने हुए थे, बड़े-बड़े छैले अपने रनिवासों में पड़े हुए थे, बहुत सारे पार्कों में फैले हुए थे और सुबह होने पर वे घर की तरफ चले।

मंडियो में दूध बहता चला जा रहा था, शराब बहती चली जा रही थी। पत्नियाँ एवं वे बाजार में खरीद-फरोख्त कर रहे थे। तब लोगों ने देखा; एक गड़गड़ाहट हो रही है, इतने ही थोड़े समय में सारे नगर के ऊपर कोई चीज पाउडर की तरह उन पर गिर रही है। वे कुछ नहीं समझ सके, धीरे धीरे और आवाज बढ़ने लगी। थोड़ी देर बाद उन्होंने देखा कि आकाश में उड़ते पक्षी झुलस-झुलस कर नीचे गिरने लगे हैं। धीरे-धीरे, गर्मी बढ़ने लगी तथा वहाँ पर उपस्थित लोगों के बदन जलने लगे। फिर लोग देखते हैं कि अंगारे बरसने लगे। यह सब घटना हरकुलिनियम और पॉम्पेई नगर के समीप हो रही थी। थोड़ी देर बाद लोगों ने देखा कि पॉम्पेई नगर में जमीन से लावा

निकलकर बह रहा है। ऐसा लगने लगा मानो जमीन और आसमान मिल गए हों। इसी तरह हरकुलिनियम में भी अंगारे बरसने लगे और वह पूर्णरूप से अंगारों से ढक गया। लोगों को घरों में भी चैन नहीं मिला, लोगों को घर और बाहर दोनों जगह बैचेनी महसूस होने लगी। इस तरह से सभी मकान लावा और अंगारों से भर गए। यह लपटें, जो सिपियस ज्वालामुखी से उठी थीं उन्हें सीरिया तक से देखा गया था। उस समय का चर्चित व महान इतिहासकार प्लिनी भी उस आग में जलकर भस्म हो गया। वह उस समुद्र के ऊपर था मगर आग के बड़वानल की तेजी से वह कहीं नहीं भाग सका। लोगों को साक्षात् यह महसूस हुआ कि जीवन कितना क्षणभंगुर है। आप अनुमान लगा सकते हैं कि एक व्यक्ति काउण्टर पर बिल देने को खड़ा है, बिल देकर वह दरवाजे तक आता है और वहीं ढेर हो जाता है। दो लड़कियाँ सोने-चाँदी के सिक्कों को हाथ में लिये भागी चली जा रही थीं। दोनों सिक्कों को लिये हुए ही मर गई हैं। एक कुत्ता, जो जंजीर से बंधा हुआ है, जमीन से निकलने वाले लावे से मरकर छत से लटक गया और अगर आप देखें तो वह आज भी छत से ही लटका हुआ है। इन सब घटनाओं में सर्वाधिक दर्दनाक किस्सा यह है कि एक आदमी जो किसी और कारण से मर गया था, उसके परिजन उसे दफनाने के लिए कब्रिस्तान ले गये थे। उसी समय इस घटना के कारण उस गड्डे में, जो परिजनों ने उसके लिए खोदा था, वे सभी दबकर मर गए।

खैर, इन सब वस्तुओं को पुराविदों ने खोज निकाला। इन सब अद्भुत वस्तुओं को खोज निकालने वाले पुराविद् का नाम जे.के. व्हीलर था। उसको इटली के वी.एस. नगर में मना कर दिया गया था कि वह उन वस्तुओं को न छुए क्योंकि ये सभी वस्तुएँ इटली की हैं। अतः इनको प्राप्त करने के लिए उसने उस पादरी से मित्रता की जिसको इन सभी वस्तुओं को देखने का अधिकार था। व्हीलर ने उस पादरी के माध्यम से उस समय के ग्रन्थों को एकत्र किया तथा पढ़ा। एक दिन वह इटली की वी.एस. नगरी से अपने प्रकाशक को लिखने बैठा। उसने लिखा— "आई वाँट टू.......", इतने में उसके गले में एक फंदा गिरा और दूसरे ही क्षण खंजर की मार हुई। वह समझ भी नहीं पाया था कि डाकू लोग उसकी सभी एकत्रित वस्तुओं को ले गए। इस प्रकार व्हीलर की दर्दनाक मृत्यु हो गई।

इससे आप अनुमान लगा सकते हैं कि एक पुराविद् का जीवन कितना कठिन एवं खतरनाक होता है, लेकिन फिर भी वह अपना कार्य करते हुए इतिहास के महत्वपूर्ण आधार का निर्माण करता है।

साहित्य

विश्व की सभी सभ्य जातियों ने साहित्य की रचना की है । साहित्य, इतिहास व कला में एक मौलिक अन्तर यह भी है कि साहित्य और इतिहास का निर्माण केवल सभ्य जातियां ही करती है यद्यपि कला का निर्माण असभ्य जातियों ने भी किया है । हांलांकि 'भा' शब्द से भाषा बनने में समय लगा है पर भाषा से साहित्य का निर्माण होने में और भी अधिक समय लगा है । यह सत्य है कि शब्द से भाषा का निर्माण होता है परन्तु भाषा साहित्य नहीं है । दोनों में अन्तर है । वह क्या अन्तर है जो शब्द से भाषा को मिला देता है तथा जो भाषा से साहित्य बना देता है ।

व्यापक रूप से साहित्य जीवन में विषयस्थ है । साहित्य समाज से विरक्त नहीं है अथवा उससे अलग नहीं है । साहित्यकार समाज में उत्पन्न होता हैं, समाज की भाषा को स्वीकार करता है, समाज के संस्कारों को स्वीकार अस्वीकार करता है तथा इसी प्रकार वह सामाजिक परम्पराओं को स्वीकार अथवा अस्वीकार करता है।साहित्यकार एक बार सामाजिक परम्पराओं से स्वतंत्र हो जाए परन्तु वह साहित्य की परम्पराओं को अधिकतर स्वीकार करता है । इसमें भी वह सदैव साहित्य की सभी परम्पराओं को स्वीकार करे, ऐसा नहीं है लेकिन साहित्य की उन मूलभूत परम्पराएं जो साहित्य को भाषा से अलग करती हैं, उनको वह अवश्य स्वीकारता है ।

साहित्य प्रांगण की अनेक वीथियां हैं । साहित्य का स्तवन बहुत प्रकार से हुआ है, उसका निर्माण भी अनेकों प्रकार से हुआ है । अनेकों बार कवि ने सीधी सरल बात — जैसा देखा है वैसा ही कह दिया है तथा इसी प्रकार उसने अनेकों बार शिल्परत साहित्य का भी निर्माण किया है । कई बार वह समाजस्थ होकर साहित्य का निर्माण करता है । यहां पर यह कहना उचित होगा कि ऐसा

सदैव ही नहीं होता है क्योंकि सभी साहित्यकार समाजस्थ नहीं होते हैं। अनेक बार साहित्यकार अपने भीतर की तरफ झांकता है और अपनी बीती, आप बीती — चाहे वह कष्ट की आप बीती हो; बगावत की आप बीती हो —वह आप बीती कहता है, अपने बर्दाश्त की बात कहता है और अपने उद्वेग की बात कहता है। अनेक बार वह सहज रूप से समाज को, उसकी परम्पराओं को; उसकी मान्यताओं - आस्थाओं को स्वीकार करता हुआ भी अपना व्यक्तित्व उसमें स्थापित करता हुआ साहित्य का निर्माण करता है।

अब देखिए, जैसे; इन वीथियों को स्पष्ट करने वाली कुछ चीजें आपके सामने रखता हूँ। हिन्दी के मिथिला निवासी एक सर्वाधिक प्राचीन मधुर गायक कवि ने बहुत ही सौन्दर्यपूर्ण तरीके से गाया —

"नव वृन्दावन, नव - नव तरुजन,
नव - नव विकसित फल ।
नवल वसंत, नवल मलयानिल,
मातल नव अलि फूल ।।

आप सब समझ गये होंगे ! शब्दावली कैसी है, बड़ी सरल है इसलिए समझने में दिक्कत नहीं होगी। इतनी सी बात समझनी है कि उसके सामने का चराचर जो है फूलों से लद गया है। और, सौन्दर्य, प्रकृति की सुषमा वह निहार रहा है, निहार कर चमत्कृत हो उठा है और जैसे उसकी बात धारा में फूट पड़ी है और उसने उक्त पंक्तियां कहीं हैं। लेकिन, सदा कवि बाह्य को ही नहीं देखता। कई बार वह अपने को देखता है, समाज से अपने सानिध्य को देखता है; समाज के प्रति प्रतिक्रिया को कहना है। जैसे, फ़िराक़ कहता है —

"रात भारी है शमा पे जिस तरह
हमने तमाम उम्र गुज़ारी है इस तरह।"

वह अपने भीतर को देखता है और दर्द से कह उठता है — शमा जो देखते हैं आप मोमबत्ती, जो तिल - तिल करके जलती है; सारी रात जलती रह सकती है तिल - तिल करके। पर, वह एक रात उसके ऊपर भारी हुआ करती है। महज़ एक रात वह जलती है। पर, कवि कहता है कि वह कुछ नहीं है हमारे सामने; एक रात उसे जलना पड़ा मगर मैं तो सारी जिन्दगी जलता रहा

हूँ, जैसे कि मोमबत्ती जलती है, जैसे शमा जलती है। रियाज़ लिखता है कि—

"बैठा हूँ पैर तोड़ के तदबीर देखिए,
मंज़िल क़दम से लिपटी है तक़दीर देखिए।"

सारी जिन्दगी वह यह कोशिश करता रहा कि आहार जुटाले। नहीं जुटा पाया। दोस्त को उसने लिखा कि जीवन की स्थिति ऐसी हो गई है ज़िन्दगी इस क़दर मायूसी उत्पन्न कर रही है कि अब की जो तकदीर सोची है दोस्त, उसकी तुम भी दाद दोगे, तारीफ करोगे। अब तक जितना सामान मुहैया करना चाहा अपने लिए वह नहीं हो सका। मगर अब की जो मैंने उपाय किया है उसकी तुम तारीफ करोगे। वह तारीफ करने की चीज क्या है? कहता है, घुटने ही तोड़ दिए, चलना बाकी नहीं रहा। जब जाना नहीं रहा मंजिल को तो मंजिल पैरों से लिपट गई है आकर। तो, वह कहता है, इस बार जो हमने उपाय किया है उसकी तुम भी दाद देना कि अब चलना ही नहीं रहा मुझे; क्योंकि अपनी कमर ही तोड़ दी मैंने, अपने घुटने ही तोड़ दिये। इसलिए मंजिल आकर कदमों से लिपट गई। ऐसी तकदीर कभी किसी की हो सकती है? ये तदबीर जो मैंने की, इसका नतीजा यह हुआ कि तकदीर ही बदल गई और मंजिल कदमों से आकर लिपट गई! बड़े दर्द की चीज है, आप इसे समझें।

और जब शायर या कवि जाम में शीरा ढालता है, प्याले में हाला डालता है, अधीर होता है, कादम्बिनी पीना चाहता है तब कुछ और तरह की बात करता है वह; जैसा गालिब ने किया। गालिब कहता है, बहुत लिखा है गालिब ने आप जानते हैं, बहुत जबरदस्त दार्शनिक है वह, सुन्दरतम उसने लिखा है, बड़ी निष्ठा से लिखा है, बड़ी आस्था से लिखा है उसने। और, लोगों का तो यह कहना है कि फारस में भी लोगों ने इतना खूबसूरत नहीं लिखा और उसका जिक्र करते हुए लोग नसरादी को भूलते हैं, नसीर फ़िरदौसी को भूलते हैं। ऐसा अच्छा गालिब लिखता है। दर्द की बात उसकी फिर कहूंगा, पहले उल्हास की बात सुनिए या उससे भी बढ़कर उसके व्यंग्य की बात सुनिए। कहता है, कि इन्सान को मैंने बहुत खोजा, इन्सान को बहुत खोजा मगर पाया ऐसे इन्सान को जिसने हमें ही काटा। कहता है कि—

"बस के दुश्वार है हर काम का आसाँ होना,
आदमी को भी मयस्सर नहीं इन्साँ होना।"

आदमी पैदा तो होता है आदमी, मगर इन्सान नहीं होता। संस्कार उसका नहीं होता है कि वह इन्सान हो जाए। हर कोई गोया इन्सान नहीं होता। मीर लिखता है—

"मत सहज हमें जानो, फिरता है फ़लक बरसों,
तब खा़क के परदे से, इन्सान जनमते हैं।"

इन्सान का जन्म जो होता है वह खाक के परदे से; जिसके ऊपर कि फलक बरसों घूमता रहता है—आसान नहीं है इन्सान का होना। इन्सान बनना आसान नहीं। क्यों? क्योंकि वह कहता है कि ऐसा भी जमाना आया है, ऐसे भी दिन आये हैं जब आहार तो खैर मयस्सर नहीं हुआ, भोजन तो नहीं मिला; मगर मुझे उसकी कुछ परवाह नहीं; जितनी परवाह तब हुई जबकि इन्सान, इन्सान न रहा आदमी हो गया। कहता है, कि अब उसका नतीजा यह हुआ कि—

"पानी से सग गुजीदा, डरे जिस तरह असद,
डरता हूँ आईने से मरदम गुजीदा हूँ।"

जिस तरह कुत्ते का काटा हुआ आदमी पानी से भागा करता है, डरा करता है, वैसे ही आदमी से डरने लगा हूँ। क्यों? क्योंकि आदमी का काटा हुआ हूँ; आदमी ने मुझे काटा है इसलिए आदमी से डरने लगा है, वह। आदमी से इतना नहीं डरने लगा जितना आईने से डरने लगा। उससे बढ़कर अगर आईने के सामने वह खड़ा हुआ तो आदमी की शक्ल दिखलाई पड़ जाएगी उसे, अपनी शक्ल! और वह आदमी का काटा हुआ है।

इस तरह गालिब कहता है, एक स्थिति आती है जब आदमी जिन्दगी से लाचार होकर बेपरवाह हो जाता है। जब वह यह समझने लगता है कि कुण्ठा उसे मार डालेगी, कि जमाना उसका दुश्मन हो गया है; समाज उसका आहार तक मुहैया नहीं करता, ऐसी स्थिति उसकी आती है तब खुदा की राह पर वह अपने को छोड़ देता है और कहता है—

"रौ पे रक्शे उम्र कहां देखिये थमे ?"

उम्र का घोड़ा बेलगाम छोड़ दिया है, वह बेलगाम चल पड़ा है अपनी राह पर सरपट—

"रौ पै रक्शे उम्र कहाँ देखिये थमे,
न हाथ बाग पै है न पां है रक़ाब पै ।"

न तो बाग के ऊपर हाथ है मेरा और न रकाब में पैर ही है। देखिये, कहाँ तक भागता है यह घोड़ा उम्र का, कहीं ठहरता है। ये स्थिति हो गई है।

तो, शायर या कवि एक तो वह हुआ करता है जो साहित्य की रचना करता है। समाज के थपेड़े खाता है, तकलीफ ज्यादा हो तो लिखता है, समाजस्थ होकर लिखता है। समाज का विरोध नहीं करता, समाज के प्रति प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं करता। समाज की बहुत सी चीजें उसे बेजा लगती हैं, उनके खिलाफ चाहे तो बगावत करें मगर वह समाज विरोधी कभी नहीं होता। गालिब की स्थिति यही है, ऐसा नहीं है कि सारे साहित्यकार ऐसे ही होते हों। मगर, इस देश का जो साहित्यकार है उसने अपनी बात दूसरे तरीके से भी कही है। तुलसीदास ने कहा कि, मैं तो साहित्य का अपने लिए ही निर्माण करता हूँ, अपने सुख के लिए, अपने अन्तः सुख के लिए। रघुनाथजी की गाथा जो लिख रहा हूँ 'रामचरितमानस' वह इसलिए लिख रहा हूँ कि जो सुरमी की धारा की तरह प्रत्येक जन को छुए और उसे पवित्र कर दे, पावन कर दे। और, यह प्रतिज्ञा उनकी बिल्कुल सही थी। क्यों? क्योंकि जिस काल में वे लिखने लगे थे, उस काल में बड़े-बड़े दार्शनिक काशी में थे और तब वह वहाँ गये। संस्कृत में काफी निष्ठा थी। जो थोड़े-से श्लोक आज वह छोड़ गये हैं मंगलाचरण के रूप में, उनसे पता चलता है कि अगर वह चाहते तो, संस्कृत में भी वह काफी उम्दा साहित्य निर्मित कर सकते थे। मगर न तो उसने ब्रजभाषा चुनी, जो उस काल की खड़ी बोली की जगह थी। खड़ी बोली नहीं थी तब इस तरह मगर उसकी जगह स्थापन्न यही थी। उस समय के साहित्य का स्तर ब्रज भाषा ही थी जिसमें उस समय का साहित्य लिखा जाता था। उसको स्वीकार नहीं किया, संस्कृत को उसने स्वीकार नहीं किया। गाँव से उठा और अस्सी में, जो काशी में है, काशी का गाँव ही समझिये उसे, उसमें जाकर वह बैठा। किसी दार्शनिक के पास नहीं गया

और लिखने किसमें लगा ? गँवार भाषा में— गाँव की भाषा वह लिखने लगा क्योंकि उसकी तो प्रतिज्ञा थी कि मैं तो ऐसा साहित्य लिखना चाहता हूँ जो सुरभी की तरह, गंगा की धारा की तरह बहे और प्रत्येक काल को छू करके उसके संस्कारों को पावन कर दे ? इस विचार से उन्होंने लिखा और इस प्रतिज्ञा का उपयोग भी बड़े गलत ढंग से हमारी हिन्दी में ही किया गया है।

एकाध साहित्यकार ऐसे भी हुए कि उन्होंने कहा, कि तुलसीदास ने कहा है कि मैं साहित्य कहता हूँ, अपने हृदय के सुख के लिए, आत्मसुख के लिए कहता हूँ। उन्होंने कहा कि, हम भी अपने आत्मसुख के लिए साहित्य कहते हैं। उनके संस्कार और थे, हमारे संस्कार और हैं। उन्होंने अपने संस्कारों के अनुरूप किया, हम अपने संस्कारों के अनुरूप करते हैं। परन्तु प्रतिज्ञा हम दोनों की एक ही है, मैं भी आत्मसुख के लिए कहता हूँ।

परन्तु तुलसीदास में और उनमें कितना फर्क था, यह उन्होंने नहीं समझा। जो उनका आत्मसुख था- तुलसी का- वह नागार्जुन के महायान की तरह था। हीनयान और महायान, बौद्ध-धर्म के दो प्रमुख सम्प्रदाय हैं। नाम न हीनयान है न सच पूछिये तो महायान। फिर भी महायान नामकरण नागार्जुन ने किया था, परन्तु हीनयान का नाम 'हीनयान' नहीं पड़ा था तब तक, जब तक कि महायान नहीं आया। महायान से सैंकड़ों वर्ष पहले चलते रहने पर भी हीनयान का अपना हीनयान नाम नहीं था। उसका नाम था अर्हत्वाद। पर महायान जब हुआ तो महायान ने उसको वह नाम दिया। जैसे, आज मेरे एक मित्र ने पूछा था वाममार्ग के सम्बन्ध में। वाममार्ग अब पॉजीटिव धर्म बन गया है। एक पॉजीटिव, स्वीकारात्मक दर्शन बन गया है। मगर यह वास्तविकता में आलोचनात्मक शब्द है, यह आलोचित शब्द है, यह पूर्व प्रश्न है जिसे कहते हैं। वाम पक्ष इसलिए है कि दक्षिण पक्ष है। जिन लोगों ने अपने को दक्षिण पक्ष माना है यानी सहीमार्गी माना है, जैसे इसे दाहिना हाथ भी कहते हैं और सीधा हाथ भी कहते हैं। तो, वह दक्षिण मार्ग उन्होंने मान लिया उसे कि जिस सम्प्रदाय को, जिस विचार को, विचार-सरणि को वह स्वीकार करते हैं और उस सब को उन्होंने वाममार्ग कहा, जो उनके

अनुकूल नहीं पड़ा। अब वाममार्ग ऐसा बन गया कि जिसका मतलब है 'लेफ्ट'। लेफ्ट अपने आप में पॉजीटिव है मगर वाममार्ग नाम जो है, यह गाली दी गई है उन लोगों को जिन्होंने सीधे आस्तिकवाद को स्वीकार नहीं किया। तो, उसी प्रकार जब महायान हुआ तो उसने अर्हत्वाद को हीनयान कहा। कारण क्या है ? यान कहते हैं वाहन को, यान कहते हैं जहाज को, नौका को जो समुद्र पार करा सके। अर्हत्वाद का मतलब यह है कि मैं अपने मोक्ष की कोशिश करूँ। मैं अगर आपको बौद्धिसत्व बनाने की कोशिश करूँ तो वह अर्हत्वाद हुआ। मगर इसका मतलब तो यह हुआ कि मेरा यान बड़ा छोटा है, मैं अकेला ही उस पर सवार होना चाहता हूँ। जहाँ कोई दूसरा आया उस यान के ऊपर कि नौका गर्क, पानी में डूब गई। और, महायान जो बनाया नागार्जुन ने उनका यह कहना था कि हमारा तो महायान है। क्योंकि बौद्धिसत्व ने यह कहा था- बुद्ध ने–, बौद्धिसत्व के स्वरूप में उसने यह कहा था कि तब तक मैं निर्वाण प्राप्त नहीं कर सकूंगा, निश्चय करके प्रतिज्ञा करता हूं कि जब तक एक भी जीव धरा पर अनिर्वण्य रह सकेगा। ठीक वैसे ही जैसे बाद में ईसा कहते हैं कि मैं संसार का सारा पाप अपने सिर पर लेता हूँ और सारे संसार को निष्पाप कर रहा हूँ। यह प्रवृत्ति लेकर जब बौद्धिसत्व ने कहा कि जब तक एक भी प्राणी अनिर्वण्य रह जाएगा तब तक मैं निर्वाण में प्रवेश नहीं करूँगा। इस स्थिति को लेकर नागार्जुन ने उसको कहा कि यह महायान है क्योंकि यह यान इतना बड़ा है कि जिसमें सारे संसार के प्राणी अगर चढ़ें तो भी पार कर जाएँ, डूबने का कोई अंदेशा न रहे। उन लोगों ने जिन्होंने अपने को महायानी कहा उन्होंने अर्हत्वाद को हीनयान कहा, लघुयान कहा, क्योंकि मात्र वह अपना उद्धार था, अपना जो मोक्ष था केवल उसके लिए ही वह प्रयत्न करते थे। यही स्थिति हुई, जो आदमी कहता है 'स्वान्त सुखाय', जो यौन साहित्य के लिखने वाले भी आज हैं, अत्यन्त अश्लील साहित्य के जो लिखने वाले हैं, मैं पहले आपको बता दूं कि श्लील और अश्लील यह कला में या साहित्य में नहीं होता। केवल उसका निरूपण जो होता है, उसकी परिणिती जो होती है उसको देखना होता है कि वह श्लील है या अश्लील ! समूचा जीवन जो है, उसको प्रेरित जो करता है अगर वह आदमी, वह साहित्यकार केवल यौन की तरफ

यानी अश्लील की तरफ है तो उसको सत्साहित्य नहीं कहते। और, अगर यौन या अश्लील या शृंगार एक अनुपात में आये तो न केवल वह साधु है बल्कि वह अपेक्षित है, वह अनिवार्य है। जीवन जो है वह शरीर का धर्म है, वह जीवन भोजन करता है, आहार के बगैर टिक नहीं सकता। अगर आहार नहीं है तो जीवन नहीं है और इसीलिये आप लोग जाने की एक तन की भूख होती है, एक मन की भूख होती है। तन की भूख तो शरीर का धर्म है, आहार उसके लिए निश्चित रूप से चाहिए। आहार नहीं रहा तो धर्म का साधन जो है शरीर 'फल धर्म साधन' वह मिट जाएगा। इसीलिए आवश्यक है कि तन की भूख नितान्त आवश्यक है। पर, आदमी सुबह खाना खाए और उसके बाद फिर चांवल चुनने लग जाए और फिर खाना बनाए, खाए और फिर चांवल चुने और फिर बनाए, फिर खाए तो उसको क्या कहेंगे? उसको पेटू कहेंगे। ठीक यही स्थिति है यौनधर्म की भी, शृंगार की भी; जिसको श्लील-अश्लील कहते हैं आप। उसका शरीर का एक अनुपात है, जीवन में उसका भी एक अनुपात है। अगर वह स्थिति न रहे तो जाति समाप्त, सारे विश्व का विनाश हो जाए, जीवन न रहे। जैसे आहार आवश्यक है वैसे ही भय, निद्रा, मैथुन ये शरीर के धर्म हैं। लेकिन, उसमें एक अनुपात होता है। अगर वही अनुपात कायम रहा, जो आहार का कायम रहता है और शरीर को धारण किये रहता है, जीवित रहता है, उसी प्रकार अगर वह भी रहा तो श्लील ही कहलाएगा और सीमा को लाँघने पर वह विलासी कहलाएगा। क्योंकि जैसे कि एक पेटू होता है वैसे ही वह एक विलासी कहलाएगा।

दोनों की आवश्यकता है जीवन में, मगर अनुपात में। और, साहित्य में दोनों का होना नितान्त आवश्यक है। इसीलिए तुलसीदास ने, जो प्रथम रूप में भक्त थे, वे भूले नहीं कि राम और सीता की कथा कहनी है; वे भूले नहीं कि जनक की वाटिका में जा करके और लक्ष्य करके छोटे भाई से कहें कि, लक्ष्मण! जनक की बेटी यही है, जिसका स्वयंवर हो रहा है........

इसी बात को स्वच्छन्दतावादी साहित्यकार भी कहते हैं कि मैं तो स्वच्छन्द हूँ। हाथ में मेरे कलम है, नीचे कागज है और कलम-दवात से लिखते चले

जाना– जैसे मन से निकले, उच्चरित हो वैसा लिखना– हमारा धर्म है, और वे कहेंगे कि हम तो स्वांत:सुखाय लिख रहे हैं। और अपनी बात को सही स्थापित करने के लिए वे कहते हैं स्वांत:सुखाय किसी और का दिया हुआ नहीं है, तुलसीदास का दिया है।

आप किसी चीज को उठाएँ तो उसके सामने वाली चीज को संभालकर रखें। और अगर आपने उसे हिलाया तो उसका सन्दर्भ बिगड़ जाएगा। आप अपनी स्थिति और तुलसीदास की स्थिति को भूल गए। तुलसीदास प्रव्रजित थे, कुटुम्ब नहीं था उनका। उनका आकार बढ़ करके, उनका परिवेश बढ़ करके छा गया था। वे समूचे समाज के साथ एकाकार हो गए थे, और वे प्रव्रजित हो गये थे। उनके साथ कोई गुंजाइश नहीं थी कि वे किसी प्रकार का 'नेपोटिज्म' करें, भाई-भतीजावाद करें; इसकी गुंजाइश नहीं थी। उनका लाभ और उनकी उपलब्धि वही थी, जो उस जन-समूह की थी जिसके लिए वे लिख रहे थे, आइडेंटिकल हो गये थे वे साधारण समाज के साथ। इसीलिए उनका 'स्वांत:सुखाय' परांत:सुखाय था। जो लोग थे, उन सबके अनुकूल उनकी चेतना हो गई थी। पर जो लोग एकाकी हों, 'आइसोलेटेड हों; समाज से अलग–थलग अपनी स्थिति बना रखते हों, प्रतिक्रियावादी हों, समाज के विरुद्ध हों, वे अपने को कहें कि स्वांत:सुखाय लिख रहे हैं तो हम कहेंगे कि आपका अर्हत्‌वाद है, महायान नही। आप समाज के लिए नहीं लिख रहे हैं, और अगर आप यह कहना चाहें कि मुझे कुछ परवाह नहीं, मैं समाज के लिए नहीं लिख रहा हूँ। तो, मैं कहूँगा, अगर आपने प्रेस को अपना साधन बनाया, खबरदार; और प्रेस के जरिये मुझे छूना चाहा तो मैं यह चाहूँगा कि आपकी उँगलियाँ देख लूँ कि कितनी गन्दी हैं जो हमें छूती हैं। हमें भी यह अधिकार है, पाठक को भी यह अधिकार रहेगा जानने के लिए। क्यों? क्योंकि आप सामाजिक धर्म को स्वीकार करते हैं, प्रेस को आप स्वीकार करते हैं यानी कि आप चाहते हैं कि आपका साहित्य जो आपने रचा है, वह जन-जन में फैले, लोग उसको पढ़ें। तो वे पाठक के साथ शरीक हो जाते हैं जैसे आप शरीक हैं उसके लिखने वाले। वैसे ही वह पाठक हो जाता है। इसीलिए हमारे यहाँ जो लक्ष्य साहित्य के निर्माण

का था उसमें उन लोगों ने उसकी एक परिधि बनाई; एक प्रतिज्ञा बनाई। उसमें उन्होंने तीन बातें रखीं—एक तो यह कि प्रणय हो; प्रेम की पुकार हो, जिसकी तरफ गुजरूँ, हम झुकें उसकी ओर आकृष्ट हों। अंग्रेजी में कहा है- Journey for Love दूसरी बात जो हो वह है Test for Knowledge केवल एक व्यायाम के लिए हम साहित्य की रचना न करें। हम वस्तुस्थिति का दर्शन करना चाहते हैं। ज्ञान का उपार्जन जो कई रूप में हो सकता है परन्तु मूल रूप से वह साहित्य के भीतर आता है। और. तीसरा Symphathy for all living beings. जितने प्राणी हैं. जितने प्राणवान जीव हैं उनको अपने में समाहित कर लेना, उनके प्रति हमदर्द हो जाना। जैसे, जब कालिदास वर्णन करता है; एक श्लोक सुनिए उसका—

बैठा हुआ है दुष्यन्त और बसंत छा गया है या छाने वाला है। कामदेव सेनानी बन कर आता है, बसंत साथ आता है- कूकने वाले पिको के साथ आता है, कोयल के साथ और सब तरह के फूलों के साथ आता है जो बसंत में फूलते हैं। जैसे आम मंजरियां, जैसे कुरबक का पुष्प और ये सारे आते हैं जो विभूतियाँ हैं बसंत की। और दुष्यन्त बैठा है। उसकी प्रिया चली गई है या उसने निकाल दिया है स्वयं। वह बैठा चित्र बना रहा है। किस तरह से भारतीय साहित्यकार समाहित करता है चराचर को, उस पर एक नजर डालें।

बसंत गरजने वाला है, आम की मंजरियां भर गई हैं आमों के ऊपर; आम बौरा गये हैं। कहता है कालिदास—

"चूतानां चिरनिर्गतापि कलिका बध्नाति न स्वं रजः,
संनद्धं यदपि स्थितं कुरबकं तत्कोरकावस्थया।
कण्ठेषु स्खलितं गतेऽपि शिशिरे पुंस्कोकिलानां रुतं,
शङ्के संहरति स्मरोऽपि चकितस्तूणार्धकृष्टं शरम्॥"

संसार के साहित्य में आपको ऐसी बात, ऐसी पंक्तियाँ नहीं मिलेंगी। जो आम हैं वे बौरा गए हैं, उनके ऊपर मंजरियाँ भर गई हैं। कोश उनका पुष्ट हो गया है। अगर कोश खोल दें तो पराग बरस जाए चराचर पर और

जमाना महक उठे; कुछ देर नहीं है। मगर मंजरियों की निगाह जब जाती है उस मनुष्य के ऊपर जो दुःखी बैठा है, जो संतप्त बैठा है तो वह अपने को रोक लेती है, अपना कोश बन्द कर लेती है – ना, आज पराग नहीं झरने दूँगी, ऐसा कहकर आम की मंजरियाँ रुक जाती हैं—

"संनद्धं यदपि स्थितं कुरबकं तत्कोरकावस्थया।"

सरोपा कुरबक का फूलों से लद गया है। नीचे से ऊपर तक सारा पेड़ मुकुलों से लद गया है, फूलों से नहीं, कलिकाओं से लद गया है। जरा-सा बयार बहे और चटक जाएँ कलियाँ, प्रफुल्लित हो उठें।........

कण्ठ के भीतर कूक आ गई है, अब फूटने ही वाली है कि नजर पड़ती है दुष्यन्त के ऊपर। तब वह, जैसे कहा उसके लिए "तत्कोरकावस्थया" वैसे ही कहते हैं—"कण्ठेषुस्खलितं गतेऽपि शिशिरे पुंस्कोकिलानां रुतं।" कोकिला जैसे उसके कण्ठ में आकर एकदम कूक-सी जाती है। और तब क्या होता है हाल कामदेव का ?– 'शंङ्के संहरति' उसके साथ के जितने पार्षद हैं, जो हमलावर हैं, उनकी यह हालत हो गई है तो सेनानी क्या करें ? शङ्के संहरति स्मरोऽपि चकितस्तूणार्धकृष्टं शरम्" तरकश से जो आधा खींचा तीर है उसे तरकश में चुपचाप लौटा देता है। इसे आपने देखा कि कैसे चराचर को हर लेता है। चराचर की यह स्थिति है कि कभी भी संस्कृत का कवि या भारतीय कवि अपने को विलग नहीं करता चराचर से। वह न केवल प्राणियों की बात करता है, चलने-फिरने वाले प्राणियों की बल्कि फूल-पत्रों को भी उसी तरह साधता है जैसे उसमें न केवल जीवन है, न केवल आत्मा है बल्कि उसका सामान्य व्यक्ति के भीतर व्यक्तित्व है। जब उमा चलती है पल्लविनी की तरह, शिव को विजय करने चलती है तो सारा चराचर जैसे वसंत से उमंग उठता है—

"मधुद्विरेफः कुसुमैक पात्रे
पपौ प्रियांखामनुवर्तमानः—

खयाल कीजियेगा, क्या कोई शायर लिखेगा उर्दू का इस तरह "मधुद्विरेफ-

कुसुमैक पात्रै" मधुप जो है, मधुकर वह फूल को तोड़ता है, उसका जाम बनाता है; खिले हुए फूल की प्याली बनाता है और उसमें मधु को डालता है। संस्कृत में मधु के दो अर्थ होते हैं; शहद भी और शराब भी — "मधु द्विरेफ कुसुमैक पात्रै"; एक पात्र है, प्रिया के लिए वह कोई दूसरा पात्र नहीं लेता एक ही पात्र है। दो जने बैठे हुए हैं, दो जाम पी रहे हों, ऐसी बात नहीं है; एक ही पात्र है। वह कुसुमरूपी पात्र को लेता है और उसे मधु से भर देता है— "पपौ प्रियां स्वामनुवर्त्तमानः" पहले प्रिया को पिला देता है; जो बचा हुआ हिस्सा है उसको वह स्वयं पीता है, उसके बाद —

मधुद्विरेफः कुसुमैक पात्रे
पपौ प्रियां स्वामनुवर्तमानः।
शृंगेण च स्पर्श निमीलिताक्षीं
मृगीमकण्डूयते कृष्णसारः॥

काला मृग अपनी प्रिया, जो मृगी है, उसको धीरे-धीरे अपनी सींग से खुजाता है और उसके स्पर्श से जो अर्धनिमिलित हो उठती है मृगी जो उन्मीलित हो जाती है, जो कली के रूप में उसका मुख सम्पुट हो जाता है, खिले कमल के विरोध में जिस प्रकार ऐसी जो हो जाती है, उसको हल्के-हल्के सहला रहा है। यह चराचर स्थिति है, केवल, मनुष्य नहीं है। संस्कृत के कवि या भारतीय कवि अपने अद्‌भुत सौजन्य या शक्ति को मनुष्य तक ही सीमित नहीं रखता। इससे और थोड़ा सा आगे बढें तो सरोवर है. हाथी है वे जल में सचरण कर रहे हैं कमलों का आहार कर रहे हैं, जो हथिनियां हैं उनकी तरफ बढ़ती हैं, विशेषकर एक हथिनी जो उसकी प्रिया है। वह कमल की रज से गमक रहे पानी को सूंड में उठाती है, पहले सूंड में भरकर उसको देखती है और फिर हाथी को देती है। इसके पीछे संभवतः यह भाव है कि कहीं पानी में जहर न हो, पानी खराब न हो, कहीं धोखा न हो जाए इसलिए वह चख कर देती है, उस जल को हाथी स्वीकार कर अपनी सूंड को हथिनी की पीठ पर रखता है। क्या मानव व्यवहार इससे अधिक रसवत् हो सकता है? इससे अधिक बढ़कर हो सकता ?

इसी प्रकार एक अन्य विवरण है। शिव समाधि में बैठे हैं और द्वार पर

नंदी खड़ा हुआ है। देखिए, उसका मनुष्यवत् आचरण उमा आती है, नंदी जो द्वारपाल की तरह खड़ा है। उमा कहती है —

"लतागृह द्वार गतोऽथनन्दी वामप्रकोष्ठार्पित हेमको: ।

मुखार्पितैं काङ्गुलिसंज्ञयैव मा चापलायेति गणान् व्यनैषीत् ॥

शिव समाधि में बैठे हैं। गण लोग हैं किसी का मुँह उधर है, किसी का सिर बहुत बड़ा, कोई बिल्कुल बौना, कोई पर्वताकार है। चंचल ऐसे कि पैरों में जैसे गति है, इसलिए उनको संभालना बहुत जरूरी है; क्योंकि शिव समाधि में हैं। तो, इस तरह से वह नन्दी राजदण्ड धारण किये हुए खड़ा है और ऊँगली को होंठ पररखे हुए है और कहता है—सावधान,कोई हिलना मत.....माचापलाय.... हिलना-डुलना कोई मत। और नतीजा इसका यह होता है कि —

"निष्कम्पवृक्षं निभृतद्विरेफं मूकाण्डजं शान्तमृगप्रचारम् ।

तच्छासनात् काननमेव सर्वं चित्रार्पितारम्भमिवानतस्थे ॥"

अक्षरों का चुनाव भी सोचिएगा जरा; शान्त में आकारान्त जहाँ-जहाँ आएगा आपको मालूम होगा— बड़ी जबरदस्त शक्ति आ गई है शब्दों के चुनाव में। नतीजा क्या हुआ इसका ? इस तरह से एक ऊँगली होठों पर रखी । 'चुप, खबरदार; हिलना - डुलना मत ! इसका नतीजा यह होता है कि, "निभृतद्विरेफं मूकाण्डजं शान्तमृगप्रचारम्" भौंरे घबरा कर जो फूल के भीतर छिप जाते हैं और 'निष्कंप वृक्षं' जो हवा के लगने से कांप रहे थे, हिल जाते थे, वे चुप हो जाते हैं; शान्त हो जाते हैं, हिलना-जुलना उनका बन्द हो जाता है और जो अण्डे से जो उत्पन्न होने वाले पक्षी आदि हैं, वे परिन्दे जो हैं वे शान्त हो जाते हैं "शान्तमृगप्रचारम्" मृग कौन ? पशुओं का जो चलना-फिरना है वह बन्द हो जाता है। ऐसी स्थिति में "तच्छासनात् काननमेव सर्वं चित्रार्पितारम्भमिवानतस्थे" जैसे, लगता है कि सारा कानन, सारा जंगल चित्र के भीतर अंकित कर दिया गया है; कोई हिलता-डुलता नहीं है।ऐसी स्थिति में शिवा आती है,उमा आती है। ख्याल कीजियेगा; मैं बता रहा था कल, कि वह हमदर्दी, वह जो दूर तक छूने वाली हमदर्दी है उसका जिक्र कर रहा था। लेकिन उसके साथ ही इसको देख लें। ऐसा नहीं है कि जिसको हम अश्लील कहते हैं उसको कालीदास ने छुआ नहीं है; क्योंकि जैसा मैंने कहा, कला और साहित्य में श्लील और अश्लील नहीं होता। केवल

सुन्दरता होती है ....।

उसके बाद जब नंदी शिव से कहता है, उमा पधार रही हैं। शिव धीरे से कहते हैं, आने दो। वो भी लताद्वार से जरा-सा सरक जाता है, उमा अन्दर प्रवेश करें—इस तरह का इशारा करता हुआ। उमा अन्दर जाती हैं। हाथ के जो पुष्प हैं वह चरणों पर चढ़ा देती हैं और शिव ऊपर देखते हैं। देवताओं का भेजा हुआ कामदेव ऊपर वृक्ष पर बैठा हुआ है धनुष ताने हुए, प्रत्यंचा खींचे हुए। क्योंकि प्रत्यंचा कानों तक खींची हुई है और एक गोलाकार चक्र बन गया है। वहाँ वह इन्तजार में बैठा है। उसने शिव की सभा देखी तो डर के मारे हाथ से धनुष नीचे सरक पड़ा। तो वह हतोत्साहित हो गया। जब उसने उमा को चलते हुए देखा तो सारा चराचर उमा के कारण बसंत में पग गया है, परिणित हो गया है और उसने उमा को जब देखा बैठते हुए इस अद्‌भुत विक्रम के साथ जो सौंदर्य का विक्रम है तो उसने धीरे से गिरा हुआ धनुष उठाया और उसको चक्राकृत कर उस पर सम्मोहन नाम का बाण रखा और भेदने के लिए शिव को तैयार हुआ। चोट लगी, सम्मोहन का असर हुआ। जैसे ही फूल पैरों पर पड़े वैसे हीं आँखें ऊपर उठीं और, कहाँ जाते हो—

"उमामुखे बिम्बफलाधरोष्ठे व्यापारयामासविलोचनानि।"

मैंने आपको बताया था, आकारांत का खयाल कीजिएगा "व्यापारयामास— ये लगातार तीन-चार उन्होंने आकार दिए लम्बा करने के लिए और व्यापार का अंग्रेजी शब्द हुआ 'बिजनेस' लेकिन, इस बिजनेस में धूर्त्तता नहीं है, इसमें चापलूसी नहीं है, धीमे-धीमे असर होने की बात है। व्यापार धीरे-धीरे असर करता है और यह कहता है— "व्यापारयामास विलोचनानि।" उमा के जो लाल होंठ हैं उन पर जैसे ही शिव के नेत्र जाकर लगे और जैसे ही चन्द्रमा खींचता है सागर को, जैसे उसकी ऊर्मियां चलने लगती हैं, ऊपर-नीचे को तरंगावित होने लगता है, उसी प्रकार आँखें जो हैं वह ऊपर-नीचे, नीचे-ऊपर, ओष्ठ तक और अधर पर और अधर से ओष्ठ तक ऐसे लहराने लग गई हैं आँखें "व्यापारयामास विलोचनानि।" और थोड़ा-सा अपनी ऊँचाई से उतर कर कालिदास ने ऐसा कुछ वर्णन किया है कि जो अनेक लोगों को

शायद लगे कि थोड़ा-सा बाजारु है। बाजारु बिल्कुल नहीं है। वही जीवन है जो वे बता रहे हैं कि ऐसी स्थिति जब हो जाए कि शिव की आँखें मण्डराने लग जाएँ होठों के ऊपर तो उमा क्या करे ? लगता है जैसे, सीन करप्ट' हो गया और नतीजा क्या हुआ, क्या किया उसने कि.... सुन्दर से सुन्दरतम कैसे हो जाये तो, उसने क्या किया ! आँखें बड़ी-2 थीं, उपान फैले हुए थे कानों तक। हिन्दी के कवि ने कहा है कि किस तरह आँखें ऐसी हों कि कान से बात करने लग जाएँ। और भूलता नहीं अगर, कि एक मित्र थे, जापान से आए हुए थे। उन्होंने सारा लेख जो पढ़ लिया तो मैंने एक दिन पूछा– पढ़ लिया ? उन्होंने कहा हाँ। मैंने कहा कि, समझ गये न ! उन्होंने कहा, समझ गये। मैंने कहा- अच्छा लगा ? उन्होंने कहा- बहुत अच्छा लगा, पर एक बात समझ में नहीं आई। मैंने कहा- वह क्या ? उन्होंने कहा, यह कटाक्ष क्या बला है, किताब में सब जगह भरा हुआ है, ये कटाक्ष क्या है ? मैंने कहा- इसका जबाब मैं नहीं दे सकता।

तो, वह स्थिति लानी थी उमा को। भारतीय स्त्री ही कटाक्ष करना जानती है और कर सकती है; दुनियाँ में और कहीं नहीं होता। इसमें बहुत सी बातें हैं; कुछ कायदे–कानून भी हैं आँखों के और भी कुछ बाते हैं। सब साहित्यों की, सारे देशों की अपनी-अपनी परम्पराएँ हैं। एक मेरे गुरुवर थे प्राण साहब, पढ़ाते थे अंग्रेजी। एक रोज उन्होंने कहा कि तुम हिन्दी का बहुत गाना गाते हो, तुम जरा-सा अनुवाद कर दो हिन्दी में "Don't disturb the class" का, उर्दू में नहीं। मैंने कहा कि मैं तो नहीं मानता उर्दू को हिन्दी से भिन्न; क्योंकि इसके शब्दों को मैं प्रयोग करता हूँ खुशी के साथ और मुझे ऐसा लगता है कि हिन्दी ऊँची उठ जाती है जब मैं उसमें उर्दू के लफ्जों का इस्तेमाल करता हूँ। फिर आप चाहें कि उसका जवाब यही देना है मुझे कि मैं नहीं कर सकता; क्योंकि डिस्टर्बेन्स कैसा! मगर एक बात बताइये, मैं भी एक बात कहना चाहता हूँ आपसे, आप अंग्रेजी में ट्रांसलेट करिये। उन्होंने कहा, कहो, मैंने कहा- 'राधाजी रूठ गई' करिये अनुवाद ! उन्होंने कहा- कभी अनुवाद की बात करें, कभी डिजीटेशन की बात करें। मैंने कहा- देखिये मास्टर साहब जल्दी मत कीजिए, आप भी यहाँ हैं, मैं भी यहाँ हूँ, दो साल, चार

साल, आठ साल, बीस-तीस लगाएँ। और जब-जब उनसे मुलाकात हुई उन्होंने कहा कि मैं कोशिशें करता हूँ, मगर मिला नहीं अब तक। मैंने कहा देखिये, राधाजी के गुस्से होने की बात नहीं है। वह मिठास जो है वह रूठने ही में आता है और उसे आप अंग्रेजी में नहीं कर सकते। वह परम्परागत है, जो इस देश की परम्परा है, वह स्थिति है उसकी। तो, वहाँ भी यही स्थिति होती है। उमा को कहते हैं कि,

"साचीकृता चारुतरेण तस्थौ मुखेन पर्यस्तविलोचनेन"

उसने देखा कि शिव की यह स्थिति है और चारों तरफ आकर्षण है, खिचाव है, गहरा खिचाव है। वह मुंह को, ठुड्डी को जरा-सा टेढा कर देती है और "साचीकृता" बड़ी इच्छा करके—"साचीकृता चारुतरेण तस्थौ", चारुतर होकर खड़ी हो गई, मुख को तिरछा किया और आँखों को कानों तक फैला दिया। अगर देर हुई तो विगत हो जाएगा और नतीजा यह हुआ कि शिव ने कहा, अरे! यह हो क्या गया; यह हमारी क्या स्थिति हो गई? जो यति का आदर्श माना जाता है उसकी स्थिति; हमारी क्या हो गई! तब जो नजर खोली दिगांत तक देखने के लिए तो देखते हैं कि नवेरू वृक्ष की शाखा में गम्भीर मुद्रा में काम ऊपर शर ताने हुए हैं। उसका नतीजा यह हुआ कि देवता लोग इसका इन्तजार जो कर रहे थे कि क्या असर इसका होता है जरा तेजी से सोचिये, कहते हैं—

"क्रोधं प्रभो संहर संहरेति यावद्गिरः खे मरूतांचरन्ति।
तावत् स वह्निर्भवनेत्रजन्मा भस्मावशेषं मदनंचकार।।

जब तक कि अभी देवताओं की पुकार और चिल्लाहट मची हुई है और खत्म नहीं हुई, आसमान में गूंज रही है कि हे प्रभु, क्रोध को रोको, रोको; इसको रोको नहीं तो सारा चराचर जल जाएगा, जल जाएगा। जब तक यह कहते रहे, पुकार गूंजती रही, तब तक वह मदन भस्माकार होकर, भस्म होकर के गिर पड़ा, इतना-सा समय लगा उसमें।

आपने देखा, किस कदर तेजी है, भाव का अर्थ है, किस कदर चराचर जो है सन्निहित हो गया है। यह दृष्टि जो है साहित्य की रही है, इस साहित्य को मैं बहुत ऊँचा मानता हूँ। ऐसा नहीं कि औरों ने साहित्य न

रचा हो, सर्वत्र साहित्य की ओर, सद्साहित्य की रचना हुई है और शिल्प रचा गया है। कालीदास ने भी अद्भुत शिल्प की रचना की है, अनेक बार तुलसीदास ने भी की है, अंग्रेजी में बहुत ही ज्यादा हुई है। बल्कि आजकल हमारे साहित्य में बहुत कुछ जो शिल्प आ रहा है वह पश्चिम से ही आ रहा है और वह शिल्प बहुत खूबसूरत भी है। चाहे साहित्य उनमें न हो मगर शिल्प उसमें बहुत बढ़िया है। जैसाकि ऑस्टर बाइल्स कहता है, शिल्प देखियेगा, खाली क्रैफ्ट Even if you don't love me, darling, say all the same, you do, for very shame the falsehood turn to truth on your tongue। प्यार न भी करती हो प्रिये, तो एक बार झूठ ही कह दो कि करती हूँ, क्योंकि मेरा दावा है कि अगर तुम्हारे जबाने-आज़म पर एक बार झूठ भी आया तो सच होकर रहेगा।

यह क्रैफ्ट है और यह क्रैफ्ट अपने यहाँ भी बहुत है, जो रीतिकालीन कवि हैं उन्होंने क्रैफ्ट का इस्तेमाल बहुत किया है—

"ऐरी बैरी बाल ये रहे हैं पीठ पाछे यातें,
बार बार बाँधति हौं बार बार कसि के।"

क्रैफ्ट है यहाँ भी बहुत। क्रैफ्ट चला है, विशेषकर रीतकालिन कविता में तो बहुत ही। मगर साहित्य की जो अहमियत है, जो उसका अद्भुत सौंदर्य है वह इसमें नहीं है। कैफ्ट भी इतना नहीं है, उसके स्थायित्व में है, उसके सौंदर्य में है। सौंदर्य का तो यह रूप है कि कालीदास केवल सौंदर्य को स्वीकार भी नहीं करता—

"यदुच्यते पार्वति पापवृत्तयेन रूपमित्यव्यभिचारित्तद्वच:।
तथाहिते शील मुदारदर्श ने तपस्विनामप्युपदेशाता गतम्॥"

हे पार्वति, रूप जो है अगर उन्नयन न करे, तो वह किसी काम का नहीं। यह गलत बात है कि रूप नीचे गिराए। उसको ऊपर उठाना है और सारा प्रयत्न जो उनका है वह ऊपर उठाने में रहा है।

साहित्यकार समाज सेवक भी है, समाज के लिए वह मर्यादाएँ स्वयं बाँधता है, मर्यादाओं में बंधकर। परम्पराएँ अनेक बार वह छोड़ देता है,

इसमें कोई सन्देह नहीं। जितना ही ऊँचा कवि रहता है, उतना ही अद्भुत सृष्टि के अनुपम होने में है, प्रतिबन्ध जो हैं समाज के, उनको तोड़ने में नहीं हैं। ऐसा नहीं है, गलत न समझें, कि समाज के जो हजारों प्रतिबंध हैं व तोड़ने के योग्य नहीं हैं, अनेकानेक प्रतिबंध हैं उनके जिनको तोड़ देना निहायत ही आवश्यक है। मगर कुछ प्रतिबंध वह स्वीकार करता है, जो 'एन्टीसोशल' नहीं होते, उन प्रतिबंधों को वह स्वीकार करता है, परम्पराओं को वह स्वीकार करता है।

साहित्य अर्थ-प्रधान है, जैसे कला प्रतीक-प्रधान है, जैसे संगीत ध्वनि-प्रधान है। इसमें अर्थ होता है, अगर अर्थ नहीं रहा तो साहित्य, साहित्य नहीं रहा। कवि कष्टकर जीवन बिताता है, तब समाज के कल्याण के लिए फिर भी लिखता चला जाता है। शोखी अनेक बार उसमें आती है और शोखी की बात करता है वह। मगर सही साहित्यकार बराबर समाज को ऊपर की ओर आन्दोलित करता है, नीचे गिराता नहीं है। ऐसा भी नहीं, मेरे मित्रों, कि समझें कि उत्कृष्ट काव्य भी वह नहीं हो सकता या होता जो यौन न हो, जो श्रृंगारपरक न हो। साहित्य ऐसा भी है जो श्रृंगारपरक और अच्छा माना गया है। एक साहित्य वैसा होता है जिसको मैं महान् मानता हूँ। जैसे तुलसीदास का साहित्य। मतलब कि जो साहित्य समाज का बहिष्कार न करके उसका उन्नयन करता है उसको ऊपर उठाता है; मैं महान् मानता हूँ। मगर वह भी सच्चा अधिकारी है यह कहलाने का जो काव्य अपने अद्भुत मनोहर गुणों से सुन्दर हो। ऐसे अनेक स्थल आते हैं काव्य में कि जो केवल सुन्दर हों, सामाजिक न हों, समाज से उनका कोई तात्पर्य न हों, पर मधुर हो। ऐसे अनेक स्थल हैं और उनको स्वीकार करना पड़ता है, चाहे सामाजिक-सेवा उनका धर्म न हो; उनका व्रत न हो।

हिन्दी में अनेक उपन्यास लिखे गये। कुछ उपन्यास निहायत उम्दा हैं; ऐसे हैं जो संत-समाज सेवा में रत होकर लिखे गये हैं। ऐसे उपन्यास भी अनेक हैं जो केवल स्वांतःसुखाय लिखे गये हैं और स्वांत.सुखाय होकर भी वे उत्कृष्ट नमूना प्रस्तुत करते हैं आपके सामने। जहां एकाग्रता होगी दृष्टि की, जहाँ

प्रतिभा होंगी, जहां साहित्य लिखने का संकल्प होगा, वहाँ सर्वत्र साहित्य उम्दा बनेगा, सुन्दर बनेगा, साहित्यकार लिखेगा उसे। लेकिन यह आवश्यक नहीं है कि वह महान् हो। तुलसी ने कभी ऐसे अचरज के वाक्य नहीं कहे. ऐसी पंक्तियाँ नहीं लिखी, जैसी उदाहरणत: महादेवी ने लिखी हैं —

"विद्युत् बन तुम आओ पाहुन
मेरी पलकों में पग धर - धर,
आज नयन आते क्यों भर - भर!"

मधुर है, कष्टकर है, कुछ याद दिलाने वाली चीज़ है; अन्तर्मुखी होकर कवयित्री लिख रही है। इस तरह की पंक्तियाँ तुलसीदास में शायद न मिलें। ऐसी भी पंक्तियाँ शायद उसमें न मिलें जैसी ग़ालिब ने लिखी हैं —

"दर्द का हद से गुजरना है दवा हो जाना।"

जितना ही सोचेंगे उतना ही इसमें डूबेंगे — 'दर्द का हद से गुजरना है दवा हो जाना'; इसी तरह की पंक्ति शायद तुलसीदास में आपको कभी नहीं मिलेगी। मगर महान् साहित्य है, इसमें किसी को सन्देह नहीं; क्योंकि वह समाज सेवा में रत है।

मैंने आपको बताया कि किस तरह तुलसीदास अस्सी पर जाकर बैठे और उन्होंने अपनी परिधि पूरी जनता के ऊपर बांधी, भाषा जनता से उठाई और उससे उन्होंने सत्साहित्य का निर्माण किया। जो प्रयत्न था वह सही था।

इस प्रकार जो कवि की वेदना है वह वैयक्तिक हो सकती है। लेकिन वो वैयक्तिक वेदना जब तक सबको, सारे चराचर को समाहित नहीं करती, तब तक बहुत ऊँची नहीं होती। साहित्य देश में भी विदेश में सर्वत्र लिखा गया है। एक से एक ऊँचा साहित्य है। लोगों ने युद्ध के ऊपर साहित्य लिखा है; जैसे हमारे यहां 'महाभारत' लिखा गया, जैसे 'रामायण' लिखी गई, जैसे 'इलियड' लिखा गया होमर का, 'ओडिसी' लिखी गई। बड़े - बड़े नाटककारों ने नाटक लिखे; ग्रीक के ईस्कीलस ने लिखा, सुफोक्लीज़ ने लिखा, यूरोपीदीज ने लिखा, एक से एक कृतिकार हो गये हैं; उन्होंने लिखा। हमारे देश में भी लिखा गया। लेकिन यहाँ का प्रयत्न जो था प्रयोजनीय था, सप्रयोजन था, सोद्देश्य था। जिस साहित्य का कोई उद्देश्य नहीं है उसका प्रयोजन नहीं है वह केवल

एक प्रकार की सौन्दर्य, की जादूगरी है और कुछ नहीं है। तो उसमें चमत्कार तो हो सकता है, सौन्दर्य हो सकता है लेकिन शिवं की स्थापना उसके द्वारा नहीं हो सकती; जो समाज का कल्याण करने वाला साहित्य है मैं महान् मानता हूँ; उसी को मैं सत्साहित्य मानता हूँ।

मगर जैसा मैंने आपसे कहा कि ऐसा भी साहित्य है जो बहुत ऊँचा साहित्य है और समाज से उसका सम्बन्ध नहीं है। प्रॉक्सिलीज़ ने अपनी एक कृति की रचना की, महान् सुन्दर कृति की जो आज भी जीवित है और लुव्र के म्यूजियम में रखी हुई है पेरिस के अफ्रोदीती की मूर्ति, तो एक बड़ा झगड़ा खड़ा हो गया, चौथी सदी ईसवी पूर्व में सारे ग्रीक - जगत् में। वह देवी के मंदिर में पधराई जाने वाली मूर्ति थी। मगर उन लोगों ने जब यह जाना और देख लिया कि यह तो प्रॉक्सिलीज़ की प्रेयसी की मूर्ति है फ्रिनी की, तब उन्हें उससे विरक्ति हो गयी। फ्रिनी बहुत जानी हुई औरत थी उस देश में और सबने सोचा कि यह अकल्याण की बात है कि वैश्या की मूर्ति वहाँ रखी जाए। फ्रिनी इतिहास प्रसिद्ध हो गई। औरत का, नारी का वह आचरण करने के लिए कि जो सचमुच केवल नारी ही कर सकती थी। कहते हैं प्रॉक्सिलीज से एक दिन उसने कहा—फ्रिनी ने—कि तुमने हमें धन की राशि दी, स्वर्ण की राशि दी, मगर कोई कृति नहीं दी मुझे अपनी रचना नहीं दी, कोई मूर्ति नहीं दी मुझे। उसने कहा, अतेलियर पड़ा है, उस अतेलियर में चले जाओ और उस में से जिसको चाहो चुन लो। एक से एक मूर्तियाँ पड़ी हुई हैं— अपोलो की मूर्ति है, हार्मिस की मूर्ति है, ज़्यूस की मूर्ति है सभी मूर्तियाँ पड़ी हुई हैं, एक से एक सुन्दर। संसार जिसको खरीदने के सपने देखता है, उसको लेने के लिए, जो भी चाहो, चुन लो।

चुनना उसके बस की बात नहीं थी, कला की वस्तु चुनना भी आसान नहीं है, उसके लिए आँख होनी चाहिये, परख होनी चाहिये। लौट के आ गई। मगर उसने गौर किया। फ़िर, जो खाली शायद औरत ही कर सकती है, उसने उसके गोदाम में आग लगा दी और गुलामों को कहा- दौड़ो, बताओ प्रॉक्सिलीज को कि उसके गोदाम में आग लग गई है। प्रॉक्सिलीज भागा हुआ गया और झट से हार्मिस को पकड़ा, उसको

आग से बचाने के लिए कि चाहे सारा जल जाए, बस, हार्मिस बच जाए। फ्रिनी दौड़ती हुई आई। उसने उसका हाथ पकड़ लिया और कहा, हार्मिस मुझे दे दो, सबसे उत्कृष्ट चीज़ है तुम्हारी। यह स्थिति पैदा कर दी। खैर, मैं बात और कह रहा था कि प्रॉक्सिलीज ने किस तरह मूर्ति बनाई अफ्रोदीत की प्रेम की देवी की मूर्ति उसने बनाई, बना तो दी और जो लुब्र के म्यूजियम में रखी हुई है, लुब्र के-पेरिस के। जब उसने वह मूर्ति बनाई तो उस मूर्ति की आँखें चूँकि फ्रिनी की हो गई इसलिए लोगों ने उसे लेने से इन्कार कर दिया। जिस नगर ने उसको ऑर्डर दिया था, उसको बनाने के लिए, उसने कहा कि रुपये तो तुम ले लो, धन तुम ले लो, जो स्वर्णराशि तुमने इसको बनाने के लिए माँगी उसे तुम ले लो। लेकिन मन्दिर में हम इसको नहीं पधरा सकते। क्लिनस वालों ने, उन्होंने उसे ले लिया। अपने यहाँ पधरा दिया। वह इतनी सुन्दर मूर्ति थी कि जाने वाले यात्री मीलों का चक्कर लगाकर, क्लीनस से होकर उसके रूप के दर्शन करने जाया करते थे। एक दिन एक भावुक युवक ने उसको अपवित्र कर दिया।

तो मेरा कहना यह है कि जो प्रतीक, जो अभिप्राय, जो 'मोटिव', चाहे वह साहित्य का है, चाहे वह कला का है अगर आपमें इस प्रकार के उद्वेग भर सकता है कि आपको सही मार्ग से विलग कर दे, उसको स्वीकार करना पड़ेगा कि वह चीज शक्तिमती है। वह चीज शुद्ध रूप से न केवल असामाजिक बल्कि समाज-विरोधी है परन्तु उसमें कला की दृष्टि से साहित्य की दृष्टि से कोई कमी नहीं रही। नतीजा यह हुआ, उसने उस नवयुवक को उद्वेलित कर दिया। तो स्वीकार करना पड़ेगा. मेरे मित्रों अद्भुत मेधा थी उस कलाकार की, अद्भुत रूप था, उसकी रची हुई उस मूर्ति का। ऐसा ही साहित्य भी हो सकता है कि अत्यन्त ऊँचा साहित्य हो, ए-वन' साहित्य हो, यद्यपि वह 'एण्टीसोशल' हो। अनेक कृतियां इस प्रकार की हैं, ऑर्थर वाइल्ड की हैं,अगर फ्लोबेयर को एक दूसरे रूप में न देखा जाए तो उसकी अनेक कृतियाँ हैं, जो उद्वेलित करती हैं। उसकी तो, मतलब 'मदाम बोवरी' जिसे कहते हैं उस पर मुकदमा ही चला है। तो, कासनोवा के ऊपर चला था, कासनोवा तो एक दूसरे तरीके से आकर्षक है, मगर कला की दृष्टि से, हालांकि कला भी

मानी गई है उसकी । पूछा उसने वोल्तेयर ने— वैसे धीरे से कहता हूँ आपके कान में। जिन मित्रों ने कासनोवा न पढ़ा हो, धीरे से पढ़लें कभी। आप लोगों के पिता तो ऐसे होंगें नहीं कि मना करें, जैसे, हम लोग बचपन में चन्द्रकान्ता पढ़ते थे और पिता मना करते थे। कासनोवा को आप बिस्तर में लेकर पढ़कर सो सकते हैं। बहरहाल कासनोवा के साहित्य के सौन्दर्य को देखकर एक दफा वोल्तेयर ने उससे पूछा– तुम कैसे अपना गद्य लिखते हो? उसने कहा कि मैं पहले अपने गद्य को पद्य में लिख लेता हूँ। गोया इतनी गरिमामयी, इतनी मधुरता उसके गद्य में है कि वोल्तेयर जैसे महान् कृतिकार को रश्क हो आया और उसने उससे पूछा, और उसने उसका जवाब दिया।

तो मेरे कहने का मतलब यह है कि परस्पर उसका जो सान्निध्य है, उसका परिवेश जो है, वो अत्यन्त यौन है। तो, मैं कहना चाहता था यह कि सौन्दर्य की राशि बिखर सकती है, कला की इकाई पर और साहित्य की इकाई पर, जो समाज विरोधी होकर भी अत्यन्त समुन्नत हों, ऐसी अनेक कृतियां हैं।

मीरन ने एक बड़ी अद्भुत कृति बनाई थी। उसकी भी यही स्थिति थी और प्रॉक्सिलीज़ की तरह वह भी एक वैश्या के पास गया। ग्रीस की वैश्या, जिसे 'हितैरी' कहते हैं। वह भारत की वैश्याओं की तरह नहीं है। भारत की वैश्याएँ भी, अगर आपने मातृकाओं को पढ़ा है तो आपको मालूम होगा कि उनका ज्ञान जहां तक है पढ़ने-लिखने का, साहित्य का, वह जो है हस्तावलक उनका हुआ करता था। ग्रीस में जो स्त्रियाँ थीं, जो पत्नियाँ थीं, वो पर्दे में रहती थीं बाहर नहीं जा सकती थीं। मिनान्दर ने लिखा है अपने एक नाटक में, जिसका अंग्रेजी अनुवाद है— A good woman is like a good coin which is hoarded with gold for the house and a bad woman is like a bad coin that circulates in the market. अच्छी भली औरत वह है जो मकान की चहारदीवारी में रहती है, खिड़की से झांकती नहीं, अच्छी औरत उस सिक्के की तरह है जिसको लोग गाड़ कर रखते हैं जमीन में। बुरी औरत उस खोटे सिक्के की तरह है जो बाजार में चलता है, उसे लोग पसन्द नहीं करते।

लेकिन इतने बड़े - बड़े इन्टेलैक्चुअल थे वहां, जैसे टूसीथीज़ था, फेरोसीज़ था, सुकरात था, अफ़लातून था, अरस्तू था— ये इन्टैलैक्चुअल कैसे व्यक्त करें, मणि को जैसे निखारा जाता है तराश करके, उस तरह इन्टैलैक्चुअल को कैसे निखारें ? पेरिक्लीज़ की तरह का आदमी, जो उस युग का बनाने वाला माना जाता है, जिसकी वजह से उस काल का युग सुकरात का युग नहीं कहलाता, पेरिक्लीज़ युग कहलाता है। जैसे स्वर्गयुग भारत में गुप्तों का रहा, वैसा ही स्वर्णयुग उनका रहा। तो, इस प्रकार के जो परिक्लीज़ थे, राजनीति में सबसे ऊँचा स्थान रखने वाला और सुकरात, जो दर्शन का सबसे बड़ा पंडित था— ये दोनों जाया करते थे अस्पाज़िया के पास केवल इसलिए कि उसकी जो अप्रतिम प्रतिभा थी उसमें से थोड़ा-सा हिस्सा ये लोग ले लें। और, बहुत से लोगों का कहना है कि प्राचीन ग्रीक में लिखा हुआ है कि सुकरात के पास जो इतनी दार्शनिकता की चमक है, उसका संस्कार इसी अस्पाजिया ने किया था, कि जब वह सेफोक्लीज़ का या अस्तोफोलीज़ का नाटक देखने के लिए बैठते थे तीनों तो बीच में अस्पाजिया होती थी, एक तरफ पेरिक्लीज़ होता था और दूसरी तरफ सुकरात होता था। ऐसे ज़माने में मीरन गया लेयीज़ के पास।

अस्पाजिया के बाद उदय हुआ इंटैलैक्चुअल का, जो ग्रीस का सबसे बड़ा इंटैलैक्चुअल था, वह मीरन था। लेयीज़ के पास मीरन एक दिन पहुँचा। सत्तर साल का हो चुका था, लम्बी दाढ़ी सारी सफेद, लम्बे बाल सारे लाल, जो सफेद होकर लाल हो जाया करते हैं। और, एक दिन पहुँचा। खबर गई अन्दर कि मीरन आया है। लेयीज़ भागी हुई आयी अपनी सहेलियों के साथ, दासियों के साथ। कहा, हुकुम ! कहा, लेयीज़ ! ग्रीस में कोई सुन्दरी नहीं है जिसको मैंने देवी रूप में गढ़के अमर न कर दिया हो। देवताओं के राजा ज्यूस की पत्नी हीरा, अफ्रोदीता, जितनी भी देवियां हैं ग्रीस की, सब मैंने ही गढ़ी हैं और जो जानी हुई शक्लें थीं उनकी ही शक्ल बनाकर उन्हें अमर कर दिया है मैंने, उन्हें देवत्व प्राप्त करा दिया है। एक तुम हो जिसकी मूर्ति हमने नहीं बनाई, क्या मैं आऊँ तुम्हारे सामने किसी दिन, और मूर्ति कोरने दोगी ? उसने कहा, कि मेरे बड़े भाग्य कि मीरन जैसा कलाकार मेरे द्वार पर आए, जिसको न तो धन की कमी है और न जिसके सामने मॉडलों की कमी है।

प्रसिद्ध था कि मीरन के पास स्वर्ण की राशि बहुत ऊँची थी। मीरन ने कहा कि, बस, एक दिन बैठो और में चाहता हूँ कि छेनी लेकर आऊँ और तुम्हारी मूर्ति उसमें गढ़ दूँ, खोद दूँ। उसने कहा- जरूर।

दूसरे दिन मीरन आया। एक हाथ में संगमरमर के टुकड़े, दूसरे हाथ में छेनी। सामने बैठ गया। लेयीज़ निर्वसित हुई, वस्त्र उठाकर रख दिये उसने और वह कोरने लग गया। धीरे-धीरे कोरने लग गया। रूप की जो शक्ति थी उसमें, धीरे-धीरे उसने अपना असर किया और घुटने टेक वृद्ध मीरन बैठा कलावंत। कहा- लेयीज़ ! मेरी स्वर्णराशि तुम्हारी अजानी नहीं है, जितना स्वर्ण मेरे पास है, वह तुम जानती हो। वह सारा स्वर्ण मैं तुम्हें देना चाहता हूँ। मगर, तुम मेरी हो जाओ।

तरुणी ने वृद्ध को देखा, तेवर घृणा में और तिरस्कार में उठे और गिरे। धीरे से उठी जहाँ बैठी थी। अपने वस्त्र के टुकड़े उठाए, तन को ढँका — (उसकी तस्वीर है) — और बाहर निकल गई। मीरन जैसे संसार में सब कुछ खो चुका हो। उसने छेनी हाथ में ली, पत्थर फेंक दिया लेयीज़ के महल के बाहर हो गया और एथेन्स छोड़ कर चला गया।

बहुत दिनों के बाद उसने कहा कि मुझे बदला तो लेना ही है, लौटा। एक साल दो साल के बाद लौटा। ऐसा मुख को बनाया कि शायद कलावंत ही बना सकता है, एक झुरी नहीं थी बदन के ऊपर — मुख के ऊपर— बाल कट गये, बाल रंग गये, दाढ़ी घुट गई। और, जिसको परपुल एण्ड गोल्ड कहते हैं वो उसने पहिना और अफ्रोदीती वाला कमरबन्द लगाया, और लेयीज़ के द्वार पर आकर खड़ा हुआ।

खबर गई। कौन हो तुम ? मैं कोरिन्थ का तरुण हूँ, नवयुवक। खबर हुई, लेयीज़ भागी हुई आई। उसने कहा, सुना, तुम कोरिन्थ से आए हो, नवयुवक ! उसने कहा हाँ मैं तो कोरिन्थ से आया हूँ और एक बात कहने आया हूँ। जब से मैंने होंश संभाला है, लेयीज तुम्हारे रूप की शोहरत का जादू हमारे ऊपर चलता रहा है। और आज मैं आया हूँ, जैसा तुमने देखा — जीवन में मैंने बहुत से वर्ष नहीं टाले। अभी तरुण हूँ मगर वह जादू बराबर घर करता जा

है और मैं इसलिए आया हूँ कि तुम्हें सौंप दूँ और तुम्हें मांग लूँ। क्या तुम्हें माँग सकता हूँ ? तुम अपने को मुझे दे दोगी ?

कहती है — सारा रूप उसने पहचान लिया — लेयीज़ कहती है, तरुण, – व्यंग्य है, "तरुण, आज तुम्हें भला मैं वह कैसे दे दूँ जिसे तुम्हारे पिता को मैंने कल देने से इन्कार कर दिया था।"

तो, वह मीरन ने जो अद्भुत देवी गढ़ी लेयीज़ की और जब-जब उसे वहाँ के धार्मिकों ने स्वीकार नहीं किया, उसको वहां के मंदिरों ने स्वीकार नहीं किया, मगर पार्थेनान ने किया। अगर आपको पार्थेनान जाना हुआ, अगर आप कभी एथेन्स जाएं तो वहां का मंदिर जो पार्थेनान कहलाता हैं, उसके ऊपर जो मूर्तियां बनी हुई हैं वो फ़ीदियस की बनाई हुई हैं. मीरन की बनाई हुई हैं लेकिन एक भी मूर्ति उनमें ऐसी नहीं है जो पहिचानी न जा सके। उस काल के लोगों ने लिखा है कि फलाँ की मूर्ति फलाँ की है और फलाँ की जगह वाली जो है वह फलाँ की बनाई हुई है लेकिन लेयीज़ का नाम नहीं है वहाँ क्योंकि वह वहाँ पधराई नहीं जा सकी। पर जो उसने लेयीज़ की मूर्ति बनाई वह अमर मूर्तियों में से मानी जाती है, संसार में।

तो, ऐसा न जानें कि बराबर समाज के अनुरूप होकर के जो लिखा जाएगा वह सत्साहित्य होगा। साहित्य बड़ा ऊँचा हो सकता है और एकाकी भी हो सकता है, "आइसोलेटेडे' हो सकता है। लेकिन जिसे मैं महान् कहता हूँ वह मैं व्यक्तिगत रूप से महान् स्वीकार नहीं करता। कारण कि जो समाज का उन्नयन न करे, समाज के कल्याण के लिए न लिखा जाए उसको सप्रयोजन लिखा जाने वाला साहित्य स्वीकार नहीं किया जा सकता। पर मैं चमत्कार को स्वीकार करता हूँ। संस्कृत के अनेकानेक सुभाषित हैं जिनमें एक से एक सुन्दर श्र्योक लिखे गये हैं, पर महान् साहित्य का दर्जा उनको ही मिलता है जिन्होंने समूचे समाज को समेटा है, जिन्होंने चराचर में भेद नहीं किया है और जिनकी हमदर्दी, सहानुभूति समूचे प्राणी-परिवार पर घूम गई है। जिसने उसको अपने भीतर अभीनिविष्ठ कर लिया है, पूरे परिवेश को स्वीकार कर लिया है।

अतः साहित्य की कथा बड़ी है। साहित्य अपने देश में भी लिखा गया है, विदेश में भी लिखा गया है। साहित्य जो आज लिखा जा रहा है हिन्दी में, वह बड़ा सुन्दर है। अनेक बार तो इतना सुन्दर लगता है शिल्प की दृष्टि से कि मुझे लगता है कि कितने सुयशी हैं आज के लिखने वाले 22-22 साल के। 20 साल पहले हम लोग सारी कोशिश करके भी जो चमत्कार भाषा में उत्पन्न नहीं कर सके थे, वह ये बच्चे 'यूँ' कर जाते हैं, इस तरह का ऊँचा शब्दों का संचयन और उनका जो शिल्प है वह बन गया है। मगर जैसे कला में पेरिस एक्सटेंड होकर दिल्ली आ गया है वैसे ही साहित्य भी आ गया है। और समाज की अब प्रार्थना नहीं हो रही है, व्यक्ति की हो रही है। मैंने आपसे बताया, मैं उस स्थिति को भी स्वीकार करता हूँ जो व्यक्ति की अनुपमता की स्थिति है, जो उसकी प्रतिभा की स्थिति है, उसको स्वीकार करता हूँ मैं। मगर मैं चाहता हूँ कि मानव - कल्याण के लिए भी, समाज के कल्याण की दृष्टि को भी सामने रख कर साहित्य रचा जाए। अनेक बार सामने बहुत ही चमत्कारी साहित्य आ जाता है। अगर व्यंग्य भी लिखा जाए सुन्दर, जो समाज को उठाए तो मुझे बड़ी खुशी होगी। इसी तरह का एक साहित्यकार ग्रीवे था। ग्रीवे ने एक साहित्य लिखा है, अमरीकी कहानी है बड़ी सुन्दर। नाम मैं भूल रहा हूं। लेकिन कहानी इस तहर की है कि—

पति-पत्नी के पास एक निमन्त्रण आया है कि उनके मित्र की किसी लड़की की शादी है। पत्नी से पति पूछता है कि क्या चीज भेंट करे? पत्नी कहती है कि फलाँ दुकान का एक विज्ञापन निकला है। उस विज्ञापन में यह लिखा हुआ था कि सब तरह की चीजें यहाँ मिलती हैं, भेंट देने के लिए। चाहो तो मकान की दीवार ले लो, चाहो तो मकान की छत ले लो, चाहो तो बहते हुए झरने ले लो, चाहो तो मछली मारने के लिए धाराएँ ले लो पानी की—जो चाहो, वह ले लो और भेंट करो। पति बोला- अच्छा है; घर की तो जरूरत होगी ही उनको इसलिए दीवारें तो वे अपने आप बना लेंगे छत हम लोग दे दें। छत हम वहाँ से ले लें और भेंट कर दें। दोनों पति-पत्नी जाते हैं उस दुकान पर और पूछते हैं उससे, यह आपका विज्ञापन निकला था, क्या छत मिलेगी आपके यहाँ ?

उसने सब बता दिया और कहा- छत लीजिए, जरूर लीजिए। उसने पूछा- क्या खरीद सकते हैं ? उसने कहा- खरीदन कैसा ! खरीदिए भी सही आप चाहें तो, आप तो किराए पर ले जाईये न ! अमरीका में सब चीज़ किराए पर चलती है। आप किराए पर छत ले लीजिए, भेंट कर दीजिए। उन्होंने कहा- अच्छी बात है, मैं देखना चाहता हूँ।

जाते हैं, वह बताता है कि न केवल छत, पूरा मकान किराये पर ले सकते हैं, जो झरने बहते हैं वे झरने किराये पर ले सकते हैं. मछली मारने के लिए पानी की जो धाराएँ हैं वह ले सकते हैं। एक बात का ख़याल रखियेगा। देखने के वक्त कहीं मिला मत दीजिएगा— एक धारा हो सकती है, ग्यारह फुट की, एक झरने की धारा हो सकती है तेरह फुट की। अगर आपको 52 फुट लेना हो तब तो मिला दीजिए बाद में घर ले जाकर, ये क्लेफ्ट से बंधे हुए हैं, पेच से जोड़े हुए हैं, दोनों का पानी ढुलका मत दीजियेगा एक-दूसरे पर। और धाराएँ जो हैं मछली मारने की ये लेना चाहें तो यह कीमत है फलाँ इतना फुट पानी की। जो चाहें वह किराये पर ले जाइये। उन्होंने कहा, यह खूब ! और क्या पेड़ भी मिलेंगे बगीचे के लिए ? कहा- पेड़ भी मिलेंगे। चिड़िया भी मिलेगी बगीचे में चहचहाने के लिए ? वह भी मिलेगी।

गए वहाँ, सब देखा, चुन लिया। दस फुट का झरना लेंगे मछली मारने के लिए। धाराएँ पड़ी हुई थीं, झरने पड़े हुए थे बराबर-बराबर जोड़े हुए। उन्होंने कहा- बगीचा किधर होगा ? उन्होंने कहा- वह उधर है, चले जाइये मैदान में। उनका जो पल्लेवाला कोना है मस्तक वाला उसके भीतर रखा हुआ है वह। ले लीजिए और चहचहाने के लिए चिड़िया भी ले लीजिये और अगर आप चाहें कि फूलों के भीतर या पेड़ों के पत्तों के भीतर मकोड़े हों कीड़े हों, वह भी ले लीजिए, उनकी कीमत कुछ नहीं है।

उन्होने कहा कि यह खूब रहा, सबकी कीमत है- उनकी कीमत नहीं है ! तो, पीछे जो चले गये थे, उन्होंने देखा कि फेब्रिक के जो मकान खड़े हैं उनमें रहना है। दरवाजे जो हैं बहुत छोटे-छोटे, नहीं के बराबर हैं। वह कहता है कि, आखिर इनमें रहता कौन है ? तो उसने कहा- जो उसके साथ-साथ

चल रहा था उसने कहा– इसमें रहते हैं कीड़े और मकोड़े जिनकी कोई कीमत नहीं है।

उसको यह मात्र बताना था कि आदमी का मोल इतना घट गया है अमेरिका में कि वह कीड़े और मकोड़े के बराबर है जिनकी कोई कीमत नहीं है। और कि अमेरिका में हर चीज किराए पर ली जा सकती हैं– मछली मारने के लिए धाराएँ, बहने वाले झरने, रकाबियाँ, क्रॉकरी, कपड़े और ताबूत भी, दफनाने के लिए वह बक्स भी मिल जाता है और जो अन्दर अंडर-टेंकर होते हैं, जो आते हैं उनको दफ़नाने वाले वे भी किराए पर लिए जा सकते हैं और उसके मर जाने के बाद उसके बाप-बेटे किराए पर देते रहें।

इस तरह व्यंग्य कसना चाहता है. कितना सुन्दर व्यंग्य है समाज के ऊपर, आप सोचें। लेकिन अभी हाल में मेरे पास इंग्लैंड की एक किताब आई है ग्रेवेल ग्रीम की जो कहानियों का संग्रह है। उसकी पहली कहानी का नाम है, शीर्षक है– 'मे आई बोरो योर हसबेंड ? 'दो-चार दिन के लिए आपके शोहर को उधार ले सकती हूँ ?

तो, हर प्रकार का साहित्य लिखा जाता है। स्वयं ग्रेवल ग्रीम बड़े ऊंचे तबके का साहित्यकार माना जाता है और वह कहानी भी लाजवाब कहानी है, शिल्प है गोया। वह क्रिएट करता हुआ लिखता है इस तरह लिखता चला जाता है। इतना सुन्दर उसने लिखा है। लेकिन बात वही है। समाज का वह स्तर व्यक्त करता, समाज का मित्र होकर नहीं बल्कि शत्रु होकर इसको मैं ऊंचा साहित्य नहीं कह सकता। सत्साहित्य इस रूप में कि सुन्दर लगने वाला साहित्य है, क्योंकि इसमें क्रेफ्ट है।

भारतीय कला

भारतीय कला के अनेक रूप हैं, अनेक विभाग हैं। मगर इस अध्याय में केवल भारतीय मूर्ति कला के सम्बन्ध में ही विचार प्रस्तुत किए जावेंगे।

कला की परिभाषा अत्यन्त कठिन है पर कला का प्रभाव आप जानते हैं। कला का प्रभाव यह होता है कि जो गतिमान है वहअक्सर सुन्न हो जाया करता है और जो सुन्न है वह गतिशील हो जाया करता है। पांच हजार साल की संस्कृति में भारत ने हजारों - हजारों मूर्तियां गढ़ीं, उसके मंदिरों में, देवालयों में, स्तूपों में हजारों मूर्तियां पधराई गई। स्तूपों में चारों ओर जो वेदिकाएँ बनी उनको भी लोगों ने मूर्तियों से अलंकृत किया। मंदिरों के बहिरंग भी अलंकृत हुए और जब अलंकरण पूरा नहीं हो सका वहां और जो अनन्त रत्न बच गये तो उन्होंने गुफाओं के स्तम्भों के ऊपर उनको बिखेर दिया।

भारतीय मूर्ति-विज्ञान, मूर्ति-कला, मूर्ति-इतिहास का विस्तार काफी बड़ा है, प्राय: छठी शताब्दी ई.पू. से उसका आरंभ होता है और 14-15 शताब्दी में बल्कि 17 वीं 18 वीं शताब्दी तक मंदिरों के निर्माण का विस्तार चला जाता है। चूंकि बात मुझे प्रतीक शब्दों में बोलनी पड़ेगी, इसलिए मैं कुछ ऐसे शब्दों का या ऐसे कालों का संकेत दे दूँ जिनसे आपको उन्हें समझना सरल हो जावेगा।

मूर्ति-कला के इतिहास के पहले काल को सिन्धु-सभ्यता की मूर्तियों का काल कहा जाता है। इस काल का प्रसार प्राय: 3250 ई.पू. से 2585 ई पू. तक है। वैसे ज्यादातर लोगों की धारणा ऐसी है कि उस सभ्यता का प्रसार प्राय: 15 वीं - 16 वीं सदी ई. पूर्व तक ही है। उसके बाद एक बहुत बड़ा व्यवधान, शून्य है; हजार साल से ज्यादा। उसके बाद मौर्य काल का आरंभ चौथी सदी ईसा पूर्व से होता है।

मौर्य काल का ऐतिहासिक आरंभ चौथी सदी ई.पू. के आखिरीचरण में ही हो जाता है पर इस काल का जो शोध हुआ, बीसवीं सदी के मध्य में तब से मौर्य काल की कला का विकास आरंभ हुआ और तब से दूसरी सदी ईसा पूर्व तक चलता रहा।

जब शुंग काल का आरंभ हुआ, शुंगों के बाद कुषाण आए और कुषाणों का आरंभ प्रायः पहली सदी से शुरू होता है। कुषाणों के बाद छोटी-छोटी अनेक जातियाँ आईं और इन सभी में गुप्तों का काल विशेष आदरणीय माना गया। कला ने, भारतीय मूर्ति कला के विकास ने, छोटे-छोटे रूप ग्रहण किये। गुप्त काल के बाद का काल दो भागों में बांटा गया है। छठी सदी ईस्वी से लेकर नवीं सदी तक पूर्व मध्य काल और नवीं सदी से बाहरवीं सदी तक उत्तर मध्यकाल।

प्रथमतः सिन्धु सभ्यता की मोहरें आती हैं। जिसमें वृषभ, हाथी और उनकी लिखावट है। यह लिखावट अभी तक पढ़ी नहीं जा सकी है। इनके नीचे लगातार गोल ठप्पे-से बने हुए निशान हैं। ये मोहरें भारत में नहीं हैं बल्कि बेबीलोन के पास, बाबुल के पास ईराक में भी मिलती हैं। जाहिर है कि हिन्दुस्तान चाहे मोहरे बेचता था या कोई ले गया था उनको वहां, यह अभी हाल ही में मिली हैं। इसका समय वही है. ईसा से करीब ढाई हजार साल पहले, आज से कोई साढ़े चार हजार साल पहले।

सिन्धु घाटी के वृषभ वाली मोहर की लिखावट जो पढ़ी नहीं जा सकी और इसका इतिहास बड़ा अद्भुत है क्योंकि इसी ने मिश्र में जो अपिलबुल होता है, उसकी पूजा आरंभ की और वहाँ से यह सुमेर पहुँचा। सुमेर में भी वृषभ की पूजा होती थी। असूरिया में निन्देवे नगर जो खोद कर निकाला गया है, वहाँ पर जो असुर राजाओं के बड़े-बड़े महल हैं, वहां पर ये गार्जियनडिटी देवता की तरह खड़े किए गए। दोनों तरफ ये वृषभ खड़े किये गये हैं और बहुत भारी हैं वह; करीब-2 पचास-पचास टन के, जो अब वहां रखे हुए हैं जो अब शिकांगो म्यूजियम, अमेरिका में रखे हुए है। वे पंखधारी हैं।

सिंधु की मूर्तियों में कांसे की नर्तकी की नग्न मूर्ति बनी हुई है, वह बड़ी

अद्‌भुत मूर्ति मानी जाती है। इसका बायां हाथ कमर के ऊपर है, दाहिना हाथ लटक रहा है। अल्हड़ स्वरूप है इसका और सांचे में ढली हुई मूर्ति-सी दिखती है। इसके केशों की बनावट मस्तक के ऊपर है। इसकी पीठ दिखाई दे रही है और वलयों से पूरी बांह भरी हुई है। कंगन के स्थान से शुरू होकर के भुजबन्ध तक इसकी चूड़ियां चली जाती हैं। अत्यन्त प्राचीन मूर्ति है और बड़ी अद्‌भुत इसलिए मानी जाती है कि दाहिना हाथ इस तरह गिरा हुआ है कि उसमें बहुत ही निपुण सहजता है, स्वाभाविकता निपुण है दोनों हाथों में।

दूसरी योगी की मूर्ति उतनी ही पुरानी माती जाती है जितनी कि सिन्धु-सभ्यता। हिन्दुस्तान में छींट की छपाई बहुत पहले शुरू हो गई थी। आज से करीब पांच हजार साल पहले। जो बालों के निकालने का तरीका है, दाढ़ी है हल्की-हल्की, सिर के केश दाढ़ी केशों से मिल गये हैं। मूंछे भी आकर मिल गई है।

ऊपर वर्णित मूर्तियां करीब ईसा से दो-ढाई-तीन हजार साल पुरानी हैं। परखम का यक्ष अशोक से एक सौ वर्ष पुराना है। यक्षों-यक्षणियों की प्रक्रिया मौर्य काल के बहुत ही पहले से शुरू हो गई थी बल्कि उनकी मूर्तियां करीब-करीब चौथी सदी ईसा पूर्व में बनीं, शायद पांचवीं सदी ईसा पूर्व तक, और कुछ ऐसी मूर्तियां हैं जो इसी तरह जिनमें बहुत सफाई नहीं है, बहुत सौन्दर्य नहीं है मगर शक्ति की जो प्रतिमा मानी जाती हैं; ऐसी मूर्तियां भी हैं। शक्ति की दृष्टि से बड़ी ही यह प्रभावशाली मूर्तियां हैं। मथुरा की मूर्ति जो परखम नाम के गांव से मिली है, जिससे इसको परखम-यक्ष कहते हैं। मूर्ति से गहनों का व हार-शृंगार का भान होता है। गले में एक तरह का कण्ठा है जिसे 'ग्रैवियक' कहते हैं।

इसी काल का एक स्तम्भ मिला है, जो साधारण तरीके मे देखने पर लगेगा कि अशोक का स्तम्भ है। परन्तु यह अशोक का स्तम्भ नहीं है, मगर उतना ही महान् है सौन्दर्य में और अपनी बनावट में, अपने कीर्तिमान में और वह स्तम्भ असाधारण माना जाता है। इसका परिचय आवश्यक

है, यह बताने के लिए कि हर देश में, हर देश का अपना एक रवैया है। अशोक के पहले हमारे पास कोई भी स्तम्भ नहीं है इस तरह का। आपको जो मूर्ति का परिचय दिया वहीं बड़ी भोंडी है। इसमें कोई संदेह नहीं कि सिन्धु की सभ्यता में हमारी जो मूर्तियां बनी, अद्‌भुत मूर्तियां हैं। लेकिन बीच में जो डेढ़ हजार साल का अन्तराल है उससे यह संभव नहीं कि वह प्रभावित कर सके। जाहिर है कि अशोक को यह आभास नहीं था कि उससे बहुत पहले करीब दो हजार साल पहले उससे सिन्धु-सभ्यता जैसी कोई चीज थी, अतः उसने अपना प्रतीक ईरान से लिया। अशोक से सौ वर्ष पहले से लेकर के और तीन सौ वर्ष पहले तक इस तरह के स्तम्भ न केवल ईरान में बनते रहे बल्कि ईरान से पहले असूरिया में-असुर देश में-असूरिया से पहले मिश्रियों के यहाँ भी बने। हम्मुराबी का जो स्तम्भ है वो करीब 19 वीं सदी ईस्वी पूर्व का है और आज और कल पेरिस के लुब्र म्यूजियम में रखा हुआ है, वह भी स्तंभ ही है। वह बहुत 'क्रूड' किस्म का है, बहुत सादा। मगर उसका महत्व यह है कि संसार का पहला कोर्ट लॉ की संहिता, कानून की संहिता उसके ऊपर लिखी हुई है, ईसा से प्रायः दो हजार साल पहले। मूर्तिमत्ता उसमें कुछ विशेष नहीं है केवल गढ़न है, स्तम्भ की। उसके बाद जो असूरी लोगों ने अपने स्तम्भ बनवाये वह बड़े सुन्दर हैं, उनके ऊपर उनकी प्रशस्तियाँ लिखी हुई हैं। उसके बाद ईरानियों ने जिनका अधिकार भारत के सिन्ध और पंजाब के ऊपर रहा था प्रायः मौर्यकाल तक। दारा लिखता है अपनी प्रशस्ति में कि भारत जो है, उसका 22 वां प्रांत है, 22 वाँ सूबा है जहां से करीब एक करोड़ की कीमत का सोना हमारे यहां हर साल आया करता है। सोने की धूल जाया करती थी हमारे यहां से, जिसका विवरण ग्रीक में दिया गया है क्योंकि ग्रीक से ही यह आंकड़ा प्राप्त हुआ है। उसी दारा के महलों में इस तरह के पचासों नहीं सैंकड़ों की तादाद में क्षयार्षा (जरक्सीज़ जिसे कहते हैं) उस के महल के भीतर स्तम्भों का बहुत बड़ा हाल है उसमें इस तरह के कुछ स्तम्भ टूटे हुए कुछ समूचे, सब खड़े हुए हैं और उकके शीर्ष मस्तक जानवरों के बने हुए हैं। ये वृषभों के हैं, और यही प्रतीक हैं अशोक के सामने भी। क्योंकि हमारे देश में इस तरह का इससे पहले कुछ भी नहीं बनता था। और

यह आवश्यक है कि अगर कला, कला जैसी कोई चीज है तो उसका विकास हो। अचानक कोई एक दम उठा करके और जैसे सांचे में कोई चीज डाल ली हो, ऐसा कुछ नहीं होता, उसका उत्तरोत्तर विकास हुआ करता है और चूँकि अशोक ने प्रयोग किया हैं लेखों का जो दारा के स्तम्भों के ऊपर हैं, शिलालेखों का, जो चट्टानों के ऊपर खुदे हुए हैं, उन अक्षरों का जो अरेमिक हैं, जिनका दारा ने प्रयोग किया था। उन अक्षरों से यह निष्कर्ष स्वाभाविक है इसलिए यह संभावना की जाती है कि ये प्रतीक उधर से ही आये होंगे। अशोक वाला स्तम्भ इसलिए कि उसको सब लोग जानते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये कला में उससे आगे बढ़े हुए हैं और अपेक्षाकृत ज्यादा विकसित अवस्था में हैं।

इसके बाद की मूर्तियों में यक्षिणी प्रमुख है जो अशोक के 100 वर्ष बाद की है। इसके ऊपर वही पालिश है जो अशोक के स्तम्भों के ऊपर है जो दारा के स्तम्भों के ऊपर है। इसको 'चँवरधारिणी' कहते हैं जो पटना के म्यूजियम में है। इसकी त्रिवली, नाभि और गहराई मनोहारी है। इसमें बहुत से 'सोफेस्टीकेशन' हैं, मोतियों की माला है, 'डबल स्प्रिंग' हैं और एक छोटा-सा स्प्रिंग गले से चिपका हुआ है। कानों में एक तरह का पेंडेन्ट है जो लटका हुआ नहीं है बल्कि एक तरह से उसमें ठूँसा हुआ है।

एक बलराम की मूर्ति है। जो पहली हिन्दू मूर्ति कही जा सकती है। बौद्धों की मूर्तियाँ बहुत बनी और ज्यादातर पहले वही बनी मगर हिन्दू मूर्ति जो अकेली उपलब्ध है, दूसरी सदी ईसा पूर्व की है, वह यही है। उस जमाने में द्वितीय सदी ईसा पूर्व में खास प्रकार की पगड़ी हुआ करती थी। वह एक गांठ हुआ करती थी। इसमें अक्सर दोहरी गांठें हुआ करतीं थीं। उससे ही हम इनको पहिचानते हैं। सामने जो फ्रंट होता है वह चिपटा हुआ होता है। सौन्दर्य का स्वरुप समय-समय से बदलता गया है, सदी-सदी बदलता गया है। उसके जो आदर्श और लक्षण हैं वे बदलते चले गये हैं। उस काल का सौन्दर्य इसी में दर्शाया जाता था कि सामना चिपटा दिखाया जाए। गले में कंठी है, कान लम्बे हैं और उन कानों में फूल पहिने हुए हैं। एक हाथ में मूसल है, दूसरे में हल है, आपको मालूम है इन लक्षणों से हम बलराम को पहिचानते

हैं। पहली हिन्दू मूर्ति ब्राह्मण सम्प्रदाय की, पहली मूर्ति है यह।

पूर्व की भांति सांची में कई तरह की यक्षी मूर्तियां बनी हुई हैं। जो स्तूप के चारों तरफ वेदिकाएँ जाती हैं उन वेदिकाओं में जगह-जगह पर थोड़ी दूरी पर स्तम्भ बने होते हैं। स्तम्भ छोटे-छोटे जो वेदिकाओं की सूची कहलाती हैं, उन सूचियों को सम्भालने के लिए, उनकी सम्भाल के लिए, उनको थोड़ी-थोड़ी दूरी पर एक तरह की निरन्तरता देने के लिए इनको बनाया गया है और, उन स्तंभों को अलंकृत किया गया है इन नारी मूर्तियों से, जिनको यक्षी कहते हैं। हाथों में जो बलय पहने हुए होते हैं कलाईयों के ऊपर कई बलय होते हैं। भारी-भारी कुन्डल लटके होते हैं कानों से और मोतियों या रत्नों की मालाओं जैसी बनी हुई चीज बालों को ढँक रहती हैं। गले के हार की करधनी की बहुत सारी लड़ियां होती थीं। विशेष कर कटि जिसकी सूक्ष्मता विशेष उल्लेखनीय है।

उस काल का बहुत ही परिपूर्ण सिर रहा है। भरहुत और सांची की वेदिकाएँ जो हैं और जो स्तूप बनवाये गये हैं, कुछ अजब नहीं जो किसी उच्च व्यक्ति ने बनवाये हों। जो पगड़ी दिखती है उस जमाने की, वह डबल सिक्योर हैं, सामने एक ग्रंथि और एक ग्रंथि पीछे की तरफ है। कानों में फूल वैसे ही हैं जैसे नारी-मूर्तियों में हैं और चिपटी कई लड़ियों की हार – रेखाएँ चली गई हैं नीचे और पीछे 'बैकगाऊण्ड' में उत्फुल्ल कमल है। यह रेलिगों के ऊपर ही एक जगह पड़ी हुई सूची के ऊपर दिखाई पड़ती है।

अभी तक यक्षी मूर्तियों का वर्णन किया गया उन्हीं का प्रसार यहां भी हैं और सांची में और भरहुत में इस तरह की मूर्तियां खोदी गई हैं, निकाली गई हैं। इनको यक्षी मूर्ति तो कहते ही हैं, इनका महत्व इस बात में है कि इनका एक खास नाम है जिनको कहते हैं 'शालभंजिका'। शालभंजिका मूर्ति का अभिप्राय तबसे लिया गया जबसे यह जाना गया कि माया, बुद्ध की माता, जब प्रसव प्रीड़ा में अपने मायके चली गई तो रास्ते में लुम्बिनी वन पड़ता था-बगीचा, उसमें शाल का वृक्ष था, पीड़ा में एक हाथ उठाया और उसकी एक शाख झुकाई अपनी तरफ। उसको कहते हैं 'शालभंजिका', जो शाल तोड़ने की मुद्रा में

खड़ी हो। तो, यह शाल मुद्रा जो थी उस जमाने के इतिहास की, प्रतीक बन गई कला की। इसलिए लगातार 'डेकोरेटिव फैक्टर्स' इस प्रकार के बनने लग गए। एक विशेष चीज़ और उस काल में थी कि नारी कच्छा पहनती थी और तिकोना कपड़ा, चुन्नट का-सा दोनों पैरों के बीच में गिरा करता था, जैसा इन मूर्तियों में है। इन्हीं बातों से हम शुंगकालीन मूर्तियों की पहिचान करते हैं। वलय पुरी कलाई के ऊपर, अनेक वलय, अनेक लड़ियों की करधनी, अनेक लड़ियों के हार और भारी-भारी कानों में कुण्डल। चिपटा सामना, सिर के जो केश हैं वह पूरे-पूरे आच्छन्न हैं; दौड़ती हुई दोनों तरफ और कानों के पीछे गायब हो जाने वाली लटें।

पहली सदी ईसा पूर्व और पहली सदी के संधि-स्थल के ऊपर बनी मूर्ति है तब की, जिसे हम लोग कम्बोजिका कहते हैं। जो बहुत कुछ ग्रीक कला के रूप में है। जो कपड़े की सिलवटें हैं वह बिल्कुल इस प्रकार के हैं हैं जिस प्रकार के ग्रीस देश के दार्शनिक पहिना करते थे या और लोग भी पहिनते थे। इनके गले में छोटा-सा हार है स्तनों के बीच में, बांहें टूट गई हैं और चेहरा, 'टिपिकल यूरोपीयन' है। यह प्रणाली संभवतः बाहर से आई है और यह मूर्ति मथुरा में मिली है। कुछ अजब नहीं जो मथुरा, में यह काले पत्थर की मूर्ति उत्तर की दिशा से आई हो; क्योंकि मथुरा में इस तरह का पत्थर नहीं है। वहां का पत्थर लाल रंग का हुआ करता है जिस पर सफेद दाग पड़े होते हैं।

गान्धार - कला हमारे देश में पहली सदी ईस्वी से लेकर के पांचवीं सदी ईस्वी तक चलती है। गांधार कला का मतलब है कि जिसमें ग्रीकों की छेनी लगी हो और घटनाएँ भारत की हों। भारत के धर्म का विकास करने के लिए उन्होंने मूर्तियों का निर्माण किया और उन मूर्तियों के निर्माण करने में चूँकि उस काल में पंजाब के ऊपर ग्रीकों का शासन था। ग्रीक राजा बहुत सारे इस देश में थे, मेनेंडर बौद्ध हो गया था, जो नागसेन नाम के बौद्ध भिक्षु का, बौद्ध स्थविर का शिष्य था, जिसके नाम से एक पुस्तक भी लिखी गई है मिलिन्द पन्ह' जो प्राकृत में है। उस मिलिन्द के जमाने से ही ग्रीकों का शासन शुरू हो गया था, दूसरी सदी ईस्वी पूर्व से ही। पंजाब के ऊपर स्यालकोट उसकी राजधानी

थी जिसका दूसरा नाम शाकल था। उसके काल के बाद ही गांधार कला का आरंभ हुआ। बहुत संभव है कि उन्हीं के जमाने में आरंभ हो गया हो; क्योंकि निश्चय ही कलाविद् जो तब तक आ जाते रहे होंगे.......

इसके बाद कुषाण शासक कनिष्क का काल प्रारम्भ होता है उसकी एक मूर्ति, जो मथुरा से मिली है तथा शीर्षहीन है वह अचकन पहने हुए है।

और इस चौके के ऊपर और अचकन के ऊपर उसका नाम लिखा हुआ है। ....शो....शो....शो....महाराजा कनिष्ठ कुषाण राजाओं का, शाहों का शाह राजा—ऐसा लिखा हुआ है। अचकन का आरम्भ इस देश में कुषाणों ने किया था, यद्यपि वह चल नहीं पाया और बाद में मुगलों ने इसका विशेष प्रचार किया और आज तो यह हमारा राष्ट्रीय लिबास माना जाता है।

साधारणतया कुबेर की जो मूर्ति होती है उसके एक हाथ में शराब पीने का जाम होता है—चपक प्याला— और दूसरे हाथ में नकुली होती है। नकुली का मतलब पर्स है जिसमें धन रखता है, धनराज कुबेर। बौद्धों में कुबेर को बड़ी मान्यता दी गई थी। यह भी गान्धार कला का ही एक नमूना है, पिलाने वाली जो साकी है, स्त्रीलिंग साकी; वह ब्लाऊज पहने होती है। वह टिपिकल ड्रेस उस ज़माने का था, पहली सदी का। सिर्फ ऊपर बालों को सम्हालने के लिए पिनें होती हैं जो गजरों के बने हुए होते हैं और गले में चिपटा-सा हार है।

पहली मूर्ति सूर्य की जो है आप देखेंगे कि औदीच्य देश से सूर्य बराबर हमारे यहाँ दिखाया जाता है। ड्रेस इनका वही कुषाणों वाला है जो कनिष्क का ड्रेस है वही इनका ड्रेस है। जूते जो हैं 'हाई-शू' कहलाते हैं मध्य एशिया में, जो घुटने तक। एक हाथ में खंजर है, अगर दूसरे हाथ में कमल नहीं होता तो यह पता भी नहीं चलता कि यह किसी कुषाण राजा की मूर्ति है अथवा सूर्य की। पगड़ी जो है वह ईरानी है। क्योंकि हमारे देश में सूर्य की पूजा का आरम्भ कुषाणों ने किया था, शकों ने किया था और पुराणों में लिखा भी है कि किस तरह शकों ने पहली बार सूर्य की मूर्ति बनाई और कैसे मन्दिर बनवाया व उसको पधराया! जब पधराने लगे तो उसमें भारतीय

हैं वे काम नहीं आए क्योंकि पूजा विधि-क्रिया है उसके अनुष्ठान की। वह इतना टैक्नीकल हो गया था या बराबर होता था कि उसमें जो भारतीय ब्राह्मण पुरोहित थे वे काम नहीं आये। तब उनको ईरानी पुरोहित को बुलाना पड़ा, उसकी पूजा आरम्भ की और उन ब्राह्मणों का नाम शाकद्वीपी पड़ा। भारत में पुराने ख्याल के जो परम्परागत ब्राह्मण हैं, वे शायद उनका छुआ जल भी नहीं पीते। मगर उनकी गणना भी ब्राह्मणों में है क्योंकि उनके विवाह-शादी आपस में हुआ करते थे। तो, सूर्य की पूजा का आरम्भ उन्हीं शकों ने या कुषाणों ने किया। इसका मतलब यह नहीं कि पूर्व में सूर्य की पूजा ही नहीं होती थी; सूर्य को अर्घ्य चढ़ता था, सूर्य की पूजा होती थी वेदों के जमाने से। वह प्रकृति के रूप में था। जो सूर्य हम आकाश में देखते थे उदय होते हुए, डूबते हुए उस सूर्य की। लेकिन रूप में जो पहली मूर्ति जो है, वह पहली सदी ईसा पूर्व की है। इसके पहले की कोई मूर्ति नहीं। कुछ मूर्तियाँ हैं, दूसरी सदी ईस्वी पूर्व की, वह पुराने जमाने के देवताओं की उभारी गई दीवारों के ऊपर हैं जैसे भाजा की गुहा में। लेकिन पधरा करके विशिष्ट रूप से पूजा मूर्ति रूप में की जाए, उस रूप में वह पहली मूर्ति रही है।

प्रसाधिका की मूर्ति भी मिलती है। प्रसाधिका उसको कहते हैं जो विशिष्ट महिलाओं के अलंकरण में, उनके मण्डन में सहायक होती है। प्रसाधिका, प्रसाधन की टोकरी लिए खड़ी रहती है। टोकरी में गजरा फूलों का, उसमें रत्न पड़े हुए होते हैं। उनको लेकर वह चलती है। वस्तुत: एक स्तम्भ के ऊपर बनी हुई, उभारी हुई मूर्ति है नारी मूर्ति, ये उसी परम्परा में है, जो वेदिकाओं के ऊपर बनी हुई उपलब्ध होती हैं।

कुषाणकालीन मूर्तियां कितनी अद्भुत मूर्तियां हैं। उनके सिर पर जो पगड़ी बंधती है, उसमें एक सींग बनी है। इनकी नाभि को गहरा बनाया गया है और मांसल मूर्ति है जो 25 साल के युवक की है। जिसका नाम शृंगी ऋषि है। ऐसा ऋषि जिनके सींग होते हैं। ऐसी कुषाणकालीन मूर्ति बड़ी अद्भुत मूर्ति होती है। 'इन्डेक्सफिगर' को दबाते हैं जब ठुड्डी के ऊपर तो इसका अर्थ हुआ करता है, चकित हो जाना। अत्यन्त चकित हो गया

यह आदमी ? क्यों चकित हो गया है ? पहली बार इसने नारी को देखा। कहानी आती है 'लोमपाद' की कथा में, राजा दशरथ की कथा में, कि वशिष्ठ से दशरथ ने पूछा कि क्या करें, अयोध्या का राज्य लगता है, उस की आहुति हो जाएगी। कौनसा उपाय है।

वशिष्ठ ने कहा, एक ही उपाय है। अगर इस प्रकार का कोई ऋषि आपके यहाँ आए, जो निष्पाप हो। सर्वथा, पाप की छाया भी जिस पर नहीं पड़ी हो, इस प्रकार का कोई ऋषि आए तभी यह संभव हो सकता है।

राजा ने पूछा- भला ऐसा कौनसा व्यक्ति होगा, ऐसा कौनसा ऋषि होगा जिस पर पाप की छाया भी न पड़ी हो ? उन्होंने कहा कि एक ऋषि हैं हिमालय में जो सर्वथा निष्पाप हैं। उन्होंने कभी नारी जाति को नहीं देखा कभी नारी प्रतिमा नहीं देखी; नारी देखी ही नहीं है। इसलिए उनको पाप नहीं लग सकता।

पुरुष सारा दोष नारी के सिर पर ढकेल देता है। खैर, तो उन्होंने बहुत सारी वैश्याएँ इकट्ठी कीं और जब ऋषि, जिनका नाम था विभ्राडक समिधा लेने के लिए जंगल में गये तो वे इसके पास पहुँची और जैसे ही इनकी नजर उनके ऊपर पड़ी, वह चकित हो गए और ऊँगली दबा कर संदेह की मुद्रा में सोचने लगे- वन में मृगाएँ देखी हैं और बहुत सारे पशु देखे हैं; उनमें से कोई भी इनकी आकृति का नहीं है, आखिर यह है कौन ?

उसके बाद उसकी स्थिति बहुत खराब हो गई। जातकों में इसकी कहानी आती है। रामायण और महाभारत में भी ये कहानियाँ हैं।

विभ्राडक ऋषि आए तो इनकी स्थिति बड़ी खराब थी। मोह निद्रा में पड़े हुए थे और वैश्याएँ गायब हो गई थीं। ऋषि आया, ऋषि ने कहा- क्या बात है ? जातक कहानी में लिखा हुआ है कि इसकी स्थिति बड़ी खराब थी, बड़ा उदास था, कभी अन्दर आए कभी बाहर, गर्मी इस कदर उसके बदन से उठ रही थी।

पिता से उसने कहा- पिता ! तुम्हारे जो ब्रह्मचारी हैं, उनके श्मश्रु बढ़

हुए हुए दाढ़ी के बाल इतने खराब लगते हैं, उनकी शक्लें इस कदर घिनोनी हैं। पर आज जो ब्रह्मचारी हमने अपने आश्रम में देखे, वे इतने अद्भुत थे कि जिनका हिसाब नहीं है। उनके ऊपर इतना सम्मोहन था कि मैं बराबर खिंचा चला जाता था। अब जब से वह चले गये हैं ब्रह्मचारी तो उनके बाद भी मुझे उनका सम्मोहन सता रहा है।

विभाण्डक समझ गये कि कोई बात हुई है। उन्होंने बाहर जाना छोड़ दिया। बाहर तो जाना ही था, समिधा लेने के लिए, जब वह गए, वेश्याएँ बैठी थीं, उनको लेकर भाग गयीं। उसके बाद उन्होंने यज्ञ करवाया, अश्वमेघ यज्ञ। रामादि का जन्म हुआ।

स्तूपों में बनी मूर्तियों का मांसल शरीर है, जैसे सांचे में ढाला हुआ प्रतीत होता है। वास्तव में सांचे में ढली मूर्तियाँ नहीं हैं क्योंकि धातु की नहीं बनी हैं केवल कला का प्रभाव आँखों पर पड़ता है। स्तूपों के सम्बन्ध में ऐसा माना जाता था कि वे महात्मा बुद्ध की किसी घटना की याद दिलाने वाला स्मारक हैं। और वह परम् शान्ति के प्रतीक हैं और उनके चारों तरफ बाहर की ओर जो स्तम्भ है, उन स्तम्भों की एक प्रक्रिया है। जो रूप उनके ऊपर ढाला जाता था, वह रूप संसार की ओर संकेत करता है। संसार, कितना बेजा है कि जहाँ पुरुष सारी कामना, सारी वासना नारी के ऊपर, नग्न नारी के ऊपर केन्द्रित रखता है और नारी का स्वरूप इतना उसके लिए आकर्षक है कि सारी कामनाएँ मूर्त हो गई हैं, नारी के रूप में जैसे। पुरुष दास बन जाता है, अपनी ही कामनाओं के अनुसार। नतीजा यह होता है कि वह अपनी ही वासनाओं के नीचे कुचला जाता है तब भी उसको बड़ी खुशी है। आँखें प्रसन्नता से निकली जा रही हैं, जिह्वा निकली जा रही है, मगर फिर भी वह बड़ा प्रसन्न है, हालांकि बावन बन गया है। कला की दृष्टि से सचमुच यह लगता है जैसे मूर्ति जो पूरी सांचे में ढली हुई है। वैसे कला में नग्नता कोई बेजा बात नहीं समझी जाती। कला केवल अच्छी या बुरी हुआ करती है, श्लील-अश्लील उसमें नहीं होता। जो पहली सदी पूर्व की कुषाणकालीन यक्षी मूर्तियाँ हैं जहाँ उनके पाजेब या नीचे के पैरों के जो आभूषण हैं उनके नीचे एक पतली-सी लाईन दौड़ती है जिससे जाहिर होता है कि कपड़ा है; लेकिन

इतना झीना कपड़ा, मलमली होता था कि सारा बदन इसके भीतर से झलकता दिखाई देता है।

नारी कितनी अल्हड़ हो सकती है, कितनी आकर्षक-सम्मोहक हो सकती है वह स्थिति इन मूर्तियों में देखी जा सकती है जो कुषाणकालीन हैं और उसी सिलसिले में बनाई गई हैं जहाँ अँगड़ाई लेती मूर्तियां सामने आती हैं।

सौन्दर्य जो भारतीय दृष्टि से माना गया है, वह दो तरह का होता है। एक सौन्दर्य वह होता है जिसकी कुछ रूपरेखा होती है, जिसका पैमाना होता है, जिसका नाप-तौल हुआ करता है। जैसे सुन्दर तोते की तरह नासिका, जो नीचे झुक करके और होंठो को चूम रही हो, उसके नीचे भरे हुए स्तन और उसके नीचे गहरी नाभि वाली पतली कमर और उसके भी नीचे कदली खंभ जैसी जांघें। उस दृष्टि से इस तरह की मूर्ति संसार भर में कहीं नहीं देखी गई हैं। न केवल भारतीय यक्षी परम्परा में एक बेजोड़ मूर्ति है बल्कि संसार में इतनी साफ-सुथरी मूर्तियां कम देखने में आती हैं। ऐसी लगती हैं जैसे सांचे में ढाल दी गई हों। तोता होता है जिसको काम के वाहन के रूप में माना गया है वह बराबर काम से सम्बन्धित है; क्योंकि यह काम से सम्बन्धित मूर्तियों में दिखाई देता है। जो करधनी है उसकी भी एक विशेष विशेषता होती है। और जहाँ पुरुष वामन, उसी के नीचे वह पड़ा हुआ होता है और बड़ा प्रसन्न दिखाई देता है।

पॉम्पेई का जिक्र करते हुए पुरातत्व के सम्बन्ध में यह तथ्य सामने आया था कि नगर में जब उसे खोदा गया और उसमें महल निकले तो उसमें हाथी-दाँत की बनी हुई भारत से गई हुई यक्षी मूर्तियाँ मिलीं। उनकी बनावट ठीक उसी तरह की है। सिर के बालों की गढ़न जो है, वह ठीक वैसी ही है। सामने एक सर्किल है और उसके बीच एक हार पड़ा हुआ है और उसके पीछे बालों की बनावट है वह कुषाणकालीन यक्षी मूर्तियों जैसी है। वेणी जिनमें फूलों के गजरे भरे हुए हैं जिनसे उसका अलंकरण किया गया है। नग्न मूर्तियां वैसी की वैसी ही हैं जैसी औरों की थीं।

शुंग काल की तरह पॉम्पेई बिल्कुल चपटा नहीं रहा बल्कि इनके मुख में कुछ गोलापन आने लगा। और, जीवन की तरफ ये लोग बढ़ते रहे। गुप्त

काल तक पहुँचते-पहुँचते मुख लम्बायमान, जिसे अण्डाकार कहते हैं, वैसा होता गया ।

कई मूर्तियों में पुरुष जो हैं वह पत्नी का वेणी प्रसाधन कर रहा है यहाँ ऐसा प्रस्तुत किया जाता रहा है । इन मूर्तियों में नीचे दासी खड़ी है सिर के ऊपर गजरों का छोर लिए हुए; जिसमें से उठा-उठा कर पति गूँथ रहा है वेणी ।

पहली सदी के बड़े अद्‌भुत कृतिकार, काव्यकार अश्वघोष ने बुद्ध के ऊपर या बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित लोककाव्य लिखे । एक का नाम है 'बुद्ध चरित्र' दूसरे का नाम है 'सौन्दर्यनंद' - सुन्दरी और नन्द की कथा । सुन्दरी और नन्द की कथा जो है वही इससे सम्बद्ध रही है । वहाँ पुरुष जो है वह अपनी पत्नी का मण्डन कर रहा है । बड़ी अद्‌भुत कहानी है जिसमें यह कहा गया है—'सौन्दर्य नंद में- किबुद्ध आये । बुद्ध ने प्रतीक्षा की कि उनके पिता संघ को निमंत्रित करें भोजन के लिए । पर शुद्धोधन नहीं आये । बुद्ध चले, भिक्षा के लिए निकल पड़े कि शुद्धोधन भागे हुए आये । उन्होंने कहा, क्या कर रहे हो ? पिता की नगरी में भीख मांग रहे हो, पिता का माथा इससे ऊँचा, उज्ज्वल तो नहीं होता ! इसका जवाब जो उन्होंने दिया है उसका अंग्रेजी अनुवाद बहुत सुन्दर हुआ है You, O, King ! belong to the line of kings I belong to the line of beggars, the Buddha राजन ! राजाओं की परम्परा में तुम हुए हो; मैं भिक्षुओं की परम्परा में हुआ हूँ कहाँ भला राजा और कहाँ भला भिक्षु !

राजा भागा हुआ गया अपने रनिवास में और देखा कि बुद्ध की पत्नी यशोधरा द्वार पर खड़ी है । उसे बताया कि बुद्ध भिक्षा पात्र लिए हुए गलियों में डोल रहे हैं; कुछ अजब नहीं कि वह तुम्हारे द्वार भी भिक्षा मांगने आएँ ।

वह खड़ी है । राजा जाता है उसके पास और कहता है- तुम्हारी पत्नी और मेरा पुत्र संसार का जनक हो गया है । तुम कैसे खड़ी हो यहाँ, दौड़ कर अपनी आँखों से देखकर अघा जाओ ।

वह कहती है— मैं क्या जानूं बुद्ध, क्या जानूं तथागत ! मैं तो आर्य-पुत्र को जानती हूँ; निश्चय वे मेरे द्वार पर आयेंगे ।

बुद्ध जाते हैं, आनंद को साथ लेकर जाते हैं क्योंकि आज जैसे बहुत सारे लोग हैं वैसे, उस काल में भी बहुत सारे लोग थे। जिसने यति का बाना तो पहन लिया, वह भिक्षु तो बन गया मगर प्रव्रजित दिखता है; धीरे-धीरे छिपकर अपनी बीवी के पास भी जाता है। ऐसा ख़याल होता है लोगों का, इसलिए उन्होंने आनन्द को साथ ले लिया। वहां गये, उस द्वार पर गये, भिक्षा-पात्र देहली में बढ़ा दिया।

यशोधरा ने कहा- सालों बाद आए। यशोधरा ने कहा, जमाने तक इन्तजार करती रही और तुम जो आए तो भिक्षु बन कर आए। आँखें पसारे हुए देहली पर खड़ी रही, मगर तुम आए भीख मांगने। अगर भीख मांगने ही आए हो तो मैं तुम्हें वह रत्न दूँगी, जो कोई माता नहीं दे सकती। जो बचा हुआ रत्न है हमारे पास, जो तुम छोड़ गए थे; हमारे जीवन का आसरा, जो रत्न था व रत्न मैं तुम्हें दूँगी।

अजन्ता की गुफाओं में बनी मूर्तियों में देखा जाता है, एक माता अपने पुत्र को उठा कर दे रही है। कला में, विशेषकर पेरिस में उसकी बड़ी प्रशंसा हुई थी; और किसी चीज के लिए नहीं इतनी क्योंकि उन लोगों को सम्भवतः उस काल तक इसका भाव नहीं मालूम था मगर दोनों सिरों का अनुपात जो था, वह बड़ा अद्भुत माना गया और उन्होंने उसकी बड़ी सराहना की। उसी के प्रसंग में 'सौन्दर्यनंद' में लिखा है- कि बुद्ध आगे बढ़े, मगर उसको पत्नी ने रोका। कहा- बेटे को दे तो दिया लेकिन राहुल को भुला न सकी, उसने कहा- राहुल! बाप से कह रही है मां, विरासत मांग बाप से।

जरा भी विचलित नहीं हुए वह, उन्होंने आनन्द से कहा, राहुल को प्रवज्या दो।

खैर, आगे बढ़े। नन्द का मकान था। नन्द सगा भाई था, मगर दूसरी माँ से, सौतेला भाई था वह। पिछले साल उसका विवाह हुआ था और वह अपनी पत्नी का मण्डन कर रहा था। अश्वघोष ने लिखा है कि पहले नंद ने अपना रूप उसके मुख पर खींचा। मूँछे बनाई अपनी उसके मुख के ऊपर। उसके बाद जब वह नाराज हुई आईने में अपनी शक्ल

देख कर तो उसने कहा कि मैं तुम्हारा मण्डन करूँगी। खैर, उसने जो कुछ किया। मगर जो फिर वह मंडन करने लगा तो वह बात प्रकट होती है।

उसने मण्डन किया। उसको कहते हैं पत्रलेख। ठुड्डी जो है क्लेफ्ट चिन की। वहाँ पर एक तिल बनाया जाता था। इस तिल के पास, ऊपर की तरफ दो टहनियाँ फेंक दी जाती थीं। उनमें नन्हे-नन्हे पत्र बनाये जाते थे। इसलिए उन्हें पत्र लेख कहते हैं। अगर उनकी टहनियाँ सफेद होती, लाल पत्तियाँ बनती थीं या काले रंग की बनती थी और तिलक लगता था-बीच में- सफेद चन्दन का। चारों तरफ छोटी-छोटी बिन्दुएँ लाख-रंग की या लाल नहीं हुआ तो सफेद चन्दन की लगती थीं, उनको भस्म कहते थे।

तो, यह विशेषक बना रहा था मण्डन, उसी काल बुद्ध आए। भिक्षा पात्र लेकर उन्होंने देहली में बढ़ाया, मगर किसी ने परवाह नहीं की।

ऊपर गई दासी। दासी ने कहा, स्वामी, कुछ कह सकती हूँ? स्वामी नंद बोले, 'बोलो, क्या बात है?' उसने कहा, देवता, तथागत आए, देहली में उन्होंने भिक्षा पात्र बढ़ाया, मगर किसी ने न तो उनको मीठे बैन दिये न उन्हें जल दिया, न आसन दिया और वे वैसे लौट गए जैसे निर्जन वन से कोई लौट जाए।

नंद ने पूछा, ऐसा हुआ कैसे? उसने कहा, सारे जो सेवक थे, सेविकाएँ थीं, दास और दासियां जितने भी थे सारे के सारे व्यस्त थे आपके कार्यों में। कोई फेनक बना रहा था बदन धोने के लिए। कोई अंगराग, उबटन बना रहा था लगाने के लिए. अनुलेपन, प्रसाधन के साधन बना रहा था कोई; कोई आपके स्नान के जल को सुवासित कर रहा था कोई शराब को सुवासित कर रहा था, मद्यपान के लिए। सब के सब व्यस्त थे।

उन्होंने कहा, प्रिये, जाना चाहता हूँ, प्रियजन को बुला कर लाऊँ। बड़ा अनर्थ हो गया, बुद्ध आए और लौट गए; उस तरह जैसा दासी ने कहा निर्जन वन से कोई लौट जाए।

इसका जवाब उसने दिया है वह अत्यन्त सुन्दर कल्पना है काव्य की—

"नाहं प्रियासोगु रुदर्शनार्थमर्हामि कर्तु तव धर्मपीड़ाम् ।
गच्छार्यपुत्रैहि च शीघ्रमेव विशेषको यावदयं न शुष्कः ।।"

'आर्यपुत्र ! जाओ; तुम्हारे धर्म के मार्ग में कांटा नहीं बनूंगी। मगर कब इसके कि, ये राग-रेखाएँ सूखें, लौट आना ।' कितनी नाजुक बात कही है ! ये राग और रेखाएँ जो अभी हमने डाली हैं, गीली हैं; ये गीली ही बनी रहें इसके पहले ही आ जाओ, सूखने न पाएँ ।

मगर, संसार का सबसे कारूणिक दृश्य घटित हुआ, जब बुद्ध ने नन्द को आने नहीं दिया। नन्द लौटा ही नहीं। नारी देहली में खड़ी रही, राग–रेखाएँ सूख गई, शरीर की त्वचा सूख गईं, नारी गिर गई, मर गई। मगर उसका नंद लौटा नहीं। अश्वघोष कहता है आगे चल कर —

"सा तं प्रयान्तं रमणं प्रदध्यौ,
प्रध्यानशून्यस्थितनिश्चलाक्षी ।
स्थितोच्चकर्णा व्यपविद्धशष्पा,
भ्रान्तं मृगं भ्रान्तमुखी मृगीव ।।

देखा उसने, उसका प्रिय चला जा रहा है; नर चला जा रहा है, मादा देख रही है और उसकी रूप रेखा को दूर - क्षितिज के ऊपर विलीन होता देख रही है। और, उसका रूप वैसे ही हो जाता है जैसे उस मृगी का हो रहा है, जो मृग की रूप-रेखा को विलीन होते हुए क्षितिज के ऊपर देखे। ऐसी मृगी जिसने अपने मुख में घास, डाल रखा हो तथा वह खा रही हो और उसको सुधि न हो कि क्या हो रहा है। क्योंकि लम्बी पलकों से भरी हुई आँखे क्षितिज के ऊपर लगी हुई हों और गाज से भरा जो कौर है उसको वह धीरे-धीरे करके टपका जा रहा हो; यह स्थिति सुन्दरी की है। नन्द नहीं आया उसका यह जिक्र है।

हमारे काव्यों में आया है कि जब तरूणी अशोक के वृक्ष की जड़ के ऊपर पैर में पाजेब पहन कर और उसके ऊपर आघात करती है, तब वह पांव से सिर तक फूल उठता है। तो इस प्रकार की अनेक मूर्तियां मिली हैं जिनमें युवती को उक्त प्रकार से दिखाया गया है। हमारे काव्यों में अक्सर यह आता है, नाटकों में भरा पड़ा है। मालविकाग्निमित्र में तो विशेष करके इसका एक एक अनुष्ठान ही है।

कुछ मूर्तियों में नारी को पुष्प-चयन करते दिखाया है। बगीचे में नारी पुष्पों का चयन कर रही है।

इस काल में सरस्वती की मूर्ति के बाएँ हाथ में वेद के पत्ते हैं इसका आधा हिस्सा ऊपर का टूट गया है। मगर यह सरस्वती की मूर्ति है, ऐसा इसके नीचे लिखा हुआ है।यह भारत की पहली मूर्ति है सरस्वती की, पहली सदी ईस्वी की।

गुप्त काल म जो दो सबसे सुन्दर मूर्तियां बुद्ध की मानी जाती हैं; शांति-प्रदायक, नासिका, जिसके ऊपर अधखुली आँखें खुली हुई हैं। गीता में योगमुद्रा बताई गई है, वह यही है। आप देखेंगे, दोनों में कितना अन्तर पड़ गया है। कुषाण मूर्तियां कितनी सुन्दर होते हुए भी कितनी कुरूप थीं— घटनाओं का जिक्र सुन्दर था। इस मूर्ति की दिशा में संभव है, इससे सुन्दर मूर्ति नहीं बनाई गई हो। गुप्त मूर्तियों के पीछे के प्रभा मण्डल में कितना सोफिस्टीकेशन है इसमें! कितनी सुन्दर है। और हाथ में जो दोनों अँगुलियां जो हैं वह धर्म-चक्र प्रर्वतन मुद्रा में हैं। मुद्राएँ विशिष्ट मानी गई हैं भारतीय कला में। ये चक्के को चला रहे हैं, धर्म का चक्का है, उसको चला रहे हैं। यह पहला उपदेश है। सारनाथ में मूर्ति मिली हैं, जिसमें उन्होंने पांच जो ब्राह्मण भिक्षु थे उनको उपदेश दिया था। कहा था कि, भिक्षुओ; मार्ग दो हैं— एक अत्यन्त विलास का मार्ग है, दूसरा अत्यन्त तप का मार्ग है; साधना का मार्ग है। एक तथागत का देखा मार्ग तीसरा है— बीच का मार्ग है; मध्यम मार्ग, वह न विलास का मार्ग है और न तप का मार्ग है। उसी को कहते हैं, उसी पहले उपदेश को धर्म-चक्र-प्रवर्तन।

इन मूर्तियों का शरीर ऐसा लगता है जैसे सांचे में ढली हुई मूर्ति हो। कोई अनुपात इसमें बिगड़ा नहीं है। यह स्वर्ण युग था, भारत का गुप्तकाल, जो स्वर्ण युग माना जाता है; जबकि काव्य, दर्शन, ज्ञान सभी-कुछ का विकास हुआ था चरम, उसी में मूर्ति कला का भी विकास हुआ है।

इस काल की मूर्ति कला गांधारकला से प्रभावित है। इसकी सिलवटें वैसी हैं जैसी ग्रीक दार्शनिकों की हुआ करती थीं। लेकिन अब राष्ट्रीयकरण

गुप्तकाल में शुरू हो गया है और उन लोगों ने उस पहनावे को एक विशेष प्रभाव दे दिया है। एक ऐसा संयोजित प्रभाव डाला है उसके ऊपर जिससे लहरियां सौन्दर्य बन गई हैं।

गुप्तकालीन वराह की मूर्ति में वराह को पृथ्वी का उद्धार करते दिखाया है। इसमें नीचे लिखा हुआ है कि चन्द्र गुप्त के मंत्री ने— शांति बिग्राहक मंत्री ने—, जो संधि और विग्रह कराता था; डिफेंस का मंत्री था, उसने जबकि चन्द्रगुप्त-विक्रमादित्य जब संसार को जीत कर यहां लौटे; पृथ्वी का उद्धार करके लौटे उस काल में यह मूर्ति बनवाई। इसका एक अभिप्राय है। अभिप्राय यह है कि शकों से जो पृथ्वी का उद्धार किया था, वह शकारि विरुद धारण किया था चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने, उसका ही प्रतीक है। इसमें वराह किस तरह अनायास खड़ा है। एक हाथ घुटने के ऊपर है। दूसरा हाथ कमर के ऊपर है और निरायास, जरा भी जिसमें मेहनत करनी न पड़े, इस तरह से अपने थूथन के ऊपर पृथ्वी को उठा लिया है। जो रक्षा करता है, अनुपात में वह बहुत बड़ा हुआ करता है। जिसकी रक्षा की जाती है वह अत्यन्त उसके बराबर छोटा होता है। जब शिव के तृतीय नेत्र के दर्शन से काम विनष्ट हो गया और उमा लौटी; रूपगर्विणी उमा जब हार कर लौटी तो यह समझ में नहीं आ रहा था कि जिसकी पति-रूप में कामना करती थी जब उसने ही काम को जला डाला तब कौन उनकी रक्षा करेगा ? तब हिमायल आया और उसको उठाया। उसके लिए कहते हैं कि —

"सुरगज इव बिभ्रत पद्मिनीं दन्तलग्नां"

जैसे सुरगज कमलनाल में विचरता हुआ कमलों को खाए और उसके दांत के ऊपर जरा-सी कमलनी का खण्ड, एक अंश लग जाए और दांत में सटा रह जाए। उस तरह से उसने अपनी कन्या को हिमालय ने उछाल के बाहों में ऊपर की तरफ फेंक दिया और जिधर से आया था उधर से उल्टे पांव लौट गया।

तो, वह रक्षा करने वाला बहुत ऊँचा होना चाहिए, बहुत ताकतवर होना चाहिए। प्रपोर्शन, अनुपात रखा गया है, वह उसी काल का है जब कालिदास ने वह अद्‌भुत श्लोक लिखा था। जबकि उमा के पिता ने उसकी रक्षा की थी। उस वक्त भी बताया गया है कि सुरगज जो अपने दांत में कमलिनी का खण्ड

उठा लेता है, उसी तरह से अनायास वराह ने पृथ्वी का उद्धार किया है, आप देख रहे हैं। पृथ्वी थूथन पर अटकी हुई है; निरायास लगता है जैसे कोई चीज़ ही नही हो इतनी लम्बी।

मुखड़े के साथ शिव का सबसे प्राचीन लिंग, पांचवीं सदी का, स्वर्णकालीन भारत का। इसको देखकर यह स्पष्ट होता है कि इस काल में मुख का अण्डकार रूप हो गया है। अब प्रतीक रूप सौन्दर्य का नहीं रहा, इसको आप देखें। जीवन को उन्होंने विशेष तरह से फेंटा है। जीवन की नकल की है उन्होंने– अण्डाकार; भरा हुआ चेहरा लम्बायमान दिखाई पड़ रहा है। होंड भरे हुए नासिका लम्बी, ठुड्डी काफी लम्बी और कपोल भरे हुए। भारतीय सौन्दर्य दो प्रकार से देखा गया। एक में तो उन्होंने बताया कि नासिकाऐसी होनी चाहिए, होंठ ऐसे होने चाहिए, ठुड्डी ऐसी होनी चाहिए— ये सारा उन्होंने बताया; आंखें जो हैं वो इस प्रकार की होनी चाहिए कमल की तरह; यह बताया गया, यह सौन्दर्य है जिसके दर्शन होते हैं हमको। लेकिन ऐसे भी स्वरूप होते हैं कि जिनमे सौन्दर्य रूपरेखा के रूप में नहीं प्रतिष्ठित होता, चेहरे के ऊपर कुछ होता है उसमें। ऐसा रूप क्या है ? उन्होंने सोचा कि ऐसा भी तो रूप हो सकता है जिसमें रूपरेखा की दृष्टि से वह बिल्कुल ही अदर्शनीय लगे, कुरूप लगे।

भारतीय मूर्तिकला के अन्तर्गत अजन्ताकालीन मूर्तियों का विशेष स्थान है। अजन्ता से एक नारी मूर्ति, जो संभवतः उमा की है, में लहरिया बालों की विशेषता परिलक्षित होती है। इसको उमा की मूर्ति माने जाने का प्रधान कारण यह है कि इसके ललाट के ऊपर तीसरा नेत्र मिला है। इसी मूर्ति की आंखें आधे से ज्यादा खुली हुई हैं, होंठ तथा कपोल भरे हुए हैं तथा बालों का गजरा गर्दन तक को ढके हुए है।

गुप्तकालीन मूर्तियों में वामन की मूर्ति विशेष उल्लेखनीन है। गुप्तकालीन वामन की मूर्तियां नग्न हैं। इन वामनों का गुप्तकालीन राज दरबार में महत्वपूर्ण स्थान था : ये स्वतन्त्र रूप से रनिवास में जा सकते थे क्योंकि इनसे रानियों के पाक दामन बने रहने में कोई डर नहीं होता था।

इसके पश्चात् भारतीय इतिहास के पूर्व मध्यकालीन हिन्दू युग में उडीसा वास्तु के अन्तर्गत उकेरी गयी मूर्तियों का महत्वपूर्ण स्थान है।

उड़ीसा के लिंगराज तथा कोणार्क सूर्य मंदिरों की वाह्य दीवारों पर उकेरी गयी असंख्य मूर्तियों अत्यन्त आकर्षक हैं। कोणार्क के मंदिर की दीवारों पर उकेरी गयी मूर्तियों पर जब मानव दृष्टि फेंकता है तो यह उत्कीर्ण आकृतियां एक अजीब गति धारण कर लेती हैं तथा यहाँ की प्रत्येक मूर्ति में एक अद्भुत तेजी भरने लगती है। कोणार्क के मंदिरों की भंगिमाओं की ओजस्विल और कामोन्मादक शक्ति की मनुष्य केवल सराहना ही नहीं करता वरन् उनके मोहक, विक्षेपक प्रभाव से वह त्राण भी मांगता है। इन उत्कीर्ण चित्रों में कुछ तो मनुष्याकार हैं, परन्तु अधिकतर छोटे-2 और ताकों में हैं। इनकी विदग्धता में एक अजीब मौलिकता का आभास मिलता है। इसमें संदेह नहीं कि इस संपूर्ण शृंखला में कामुकता नग्न ताण्डव करती है और अप्रयास हृदय में यह प्रश्न उठता है कि इस पावन देवालयों की भित्ति पर, विशेष कर पूतातिपूत इस विष्णु के अवतार श्री जगन्नाथ के मंदिर पर, हृदयग्राही परन्तु अश्लील प्रस्तर चित्रों के बनाने का क्या तात्पर्य था ? इन प्रश्नों का उत्तर भारतीय वास्तु व कला के अधिसंख्या विद्वानों ने नहीं दिया है।

इसका कारण तत्कालीन भारतीय सामाजिक धार्मिक स्थिति थी, जिसका प्रभाव इन मंदिरों की वाह्य दीवारों पर तत्कालीन मूर्तिकार ने किया। वास्तव में भारतीय कला में नग्नता का प्रादुर्भाव किसी न किसी रूप में द्वितीय शताब्दी ई०पू० में ही हो गया था। इस प्रकार उड़ीसा मंदिरों पर मूर्तियों का नग्न चित्रत्र भारत में नवीन नहीं था और न ही उसका उपयोग केवल उड़ीसा की वास्तुकला में ही हुआ था।

सम्भवतः इस नग्नता का अर्थ यह अनुभव कराना था कि नग्न वासना दलित संसार बाहर का है और उपासकों पर इसका पूर्णतया आतंक जमाने के लिए यह बाह्य चित्रण उत्कीर्ण किए गए हों। यह बात बराबर ध्यान में रखने की है कि इनमें से सारे चित्र बाहर की ओर हैं, एक भी भीतर मन्दिरों के गर्भागार में नहीं है। यह तो हुई सिद्धान्त की बात, परन्तु एक बार जब यह सिद्धान्त नग्न मूर्तियों की भावभंगिमाओं में प्रयुक्त हुआ तो फिर वह तक्षको के चित्त को अटका-अटका कर चकित, दूषित करने लगा, जैसा वह आज भी

इन मूर्तियों में प्राण फूँक-फूँक दर्शकों का मनोरंजन करता है। यह प्रभाव संभवत: वज्रयानियों का था जिसका प्रभाव सातवीं सदी के पश्चात् उड़ीसा के बाहर भी हुआ।

इस प्रकार से भारतीय मूर्तिकला ने उन आयामों को प्राप्त किया था जो अभिनव थे तथा जो आज भी विश्व समुदाय के लिए आकर्षण का केन्द्र बने हुए हैं। भारतीय मूर्तिकला की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें मानवीय सामाजिक संबंधों को इतनी अधिक विभिन्नताओं के साथ उकेरा गया है कि जिसके आधार पर तत्कालीन सामाजिक परिप्रेक्ष्य का अध्ययन किया जा सकता है। भारतीय मूर्तिकला की यह सामाजिक प्रतिबद्धता ही उसकी जीवतंता का आधार स्रोत है।